



Hari Om

Avahan is a bilingual and bimonthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

**Editor**: Swami Yogamaya Saraswati **Assistant Editor**: Swami Sivadhyanam Saraswati

**Published** by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger - 811201, Bihar.

**Printed** at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2018

**Membership** is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

Sannyasa Peeth Paduka Darshan PO Ganga Darshan

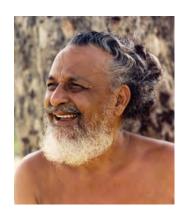
Fort, Munger, 811201 Bihar, India

☑ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

Front cover: Narayana Astra Yajna 2018

Plates - Sannyasa Peeth Activities 2018:

- 1: Devi Pooja; 2-4: Guru Bhakti Yoga;
- 5: Adhyatma Samskara Sadhana Satra;
- 6-8: Narayana Astra Yajna



## SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

If you think that becoming a renunciate, a tapasvi, being charitable and dharmic is the way to God, you may find you are wrong. To get to God, it is simply necessary to learn to love.

-Swami Satyananda Saraswati

अगर तुम सोचते हो कि संन्यासी या तपस्वी या दानी या धार्मिक बनकर तुम भगवान को पा सकते हो तो तुम गलत सोचते हो। भगवान तक पहुँचने के लिए केवल प्रेम सीखना जरूरी है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

**Published** and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger - 811201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.

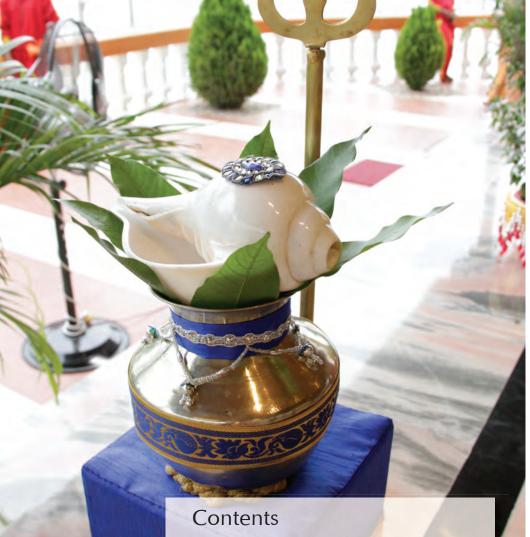
Owned by Sannyasa Peeth Editor: Swami Yogamaya Saraswati





न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दु:खतप्तानां प्राणितां आर्त्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or e<mark>ven lib</mark>eration. <mark>My</mark> only des<mark>ire i</mark>s to allevi<mark>ate t</mark>he misery and affliction of others." -Rantideva



- 2 Message for the Sadhaka3 Bhakti Yoga and Samadhi
- 5 भावों का विकास
- 9 Dealing with Negativities
- 12 साधना में भावना का महत्त्व

16 Understanding Bhava Shuddhi

25 शुद्धि के स्तर

- 29 The Path of Awakening
- 32 Mental Austerity
- 33 भाव-शुद्धि से सद्गुणों की स्थापना
- 40 Swadhyaya for Practising Bhava Shuddhi
- 42 भावना को ईश्वराभिमुख बनाना

# Message for the Sadhaka

Swami Sivananda Saraswati



When the impurities emerge from the subconscious mind and come to the surface of the conscious mind with formidable force, do not try to resist them. Repeat your ishta mantra. Do not think of your defects or evil qualities much. It is enough if you introspect and find out your defects. Do not try to attack the evil qualities. Then they will show their long faces. Develop positive virtues. Do not worry yourself often: "I have got so many defects and weaknesses." Cultivate sattwic virtues. Through meditation, and by the development of positive qualities, through the pratipaksha bhavana method, all the negative qualities will die by themselves. This is the right method.  $\blacksquare$ 

# Bhakti Yoga and Samadhi

Swami Satyananda Saraswati



Those who follow the path of bhakti yoga exclusively have an experience called trance. Trance is a kind of samadhi in which merging of the individual mind takes place through growing emotion and devotion. In raja yoga one is controlling the patterns of the mind, controlling every *vritti* or thought formation, and by stopping the manifestations of the mind one comes to a state of *shoonyata* or void. In raja yoga the process is suppression, whereas in bhakti yoga there is no suppression. One awakens the emotions, ecstatic feelings or *bhava*. Just as passion is emotion directed towards empirical things, devotion is the same emotion directed towards divinity. This devotion and emotion has to be expressed, and when it is awakened one enters into a state of trance called *bhava samadhi*, by which one awakens the emotion through devotion.

From time to time, many great souls have descended to demonstrate how to practise bhakti. The bhakta Mirabai immersed her total mind in God. She could sing the name of God and enter into samadhi or trance. When she sang God's name in kirtan and bhajan, she would forget herself completely. When the mind is impure and tainted by passions, when the mind is full of petty and insignificant worries, when even the smallest event becomes great to you, when you are not able to concentrate your mind and when your faith faces a crisis every time, then at that time, if you sing the name of God repeatedly, ten to thirty times or more, you enter into a state called bhava samadhi.

Bhava samadhi is a little different from raja yoga samadhi. In raja yoga samadhi there is external and internal mobility. In bhava samadhi, the inner self is quiet, but externally the emotions are charged with high-powered energy. It is as if one is suffering from separation from the beloved. The relationship between the individual soul and the universal soul is the same as between husband and wife. That is also the concept voiced by Christ in the Bible.

I am the wife, God is the husband, and I want to be one with Him. I suffer from separation and we are trying to unite with each other. But as long as there is individuality, one cannot merge in God. In order to shake off the individuality, the cloaks caused by ignorance will have to be removed. If you feel that you are a man or a woman, or an intellectual, engineer or doctor, or a Muslim, Hindu or Christian, when you stand before God, these are complexes.

Unless both husband and wife forget what they are, they cannot become one. That is exactly what happens in bhakti yoga. The bhakta, the devotee, represents individual consciousness, God represents spiritual consciousness, and the ultimate purpose of the bhakta is to merge in God. Just as all the rivers are flowing only to unite and merge in the ocean, in the same way, all devotees must try to move towards God and merge in Him. That is samadhi. Mirabai had such devotion.

## भावों का विकास

### रवाभी शिवानन्द सरस्वती

भाव शब्द संस्कृत पद है, जिसका अर्थ होता है, मानसिक दृष्टिकोण या स्वभाव। आन्तरिक भावना या अनुभव ही भाव है। मनुष्य में जो गुण प्रबल हैं, उनके अनुसार भाव भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् सात्त्विक भाव, राजसिक भाव और तामसिक भाव। सात्त्विक भाव विशुद्ध, दैवी भाव है। जिस तरह विचार, स्मृति या संकल्प का विकास अभ्यास द्वारा हो सकता है, उसी तरह भाव का विकास भी हो सकता है। दुर्भाव को सुभाव में रूपान्तरित किया जा सकता है।

मित्रता या शत्रुता की भावना मानसिक सृष्टि है। यह आन्तरिक भावना है। बहुत दिनों का विश्वासी मित्र एक क्षण में कट्टर वैरी बन जाता है। केवल एक कठोर शब्द सारी स्थिति को पलक झपकते ही बदल देता है। जब मित्रता का भाव रहता है तो केशव आशा करता है कि उसका मित्र राजेन्द्र बीमारी की हालत में उसकी सेवा करेगा, संकट आ पड़ने पर वह उसे ऋण भी देगा—इस प्रकार की अनेकों भावनाएँ केशव के मन में इसलिए उठती हैं कि वह राजेन्द्र को अपना मित्र समझता है। ये सब मुनष्य की भावनाएँ हैं। जब दोनों अपनी मित्रता से हाथ धो बैठते हैं तब केशव के मन में राजेन्द्र-विषयक नाना प्रकार की बुरी भावनाएँ जागती हैं। उसे अपने पुराने मित्र पर बिल्कुल विश्वास नहीं हो पाता। वह उससे डरता रहता है। रास्ते में कहीं मिल जाने पर मुँह फेर लेता है। वह उसकी निन्दा करता है। देखिए, किस तरह सम्पूर्ण परिस्थिति बदल गयी है, भाव पूर्णतया बदल गया है।

वेदान्त का सिद्धान्त है कि मनुष्य जब अज्ञान से रहित होता है तो वह ब्रह्म हो जाता है। मनुष्य भ्रम से समझ बैठता है कि वह यह शरीर है और छोटा जीव है, जिसे छोटे-छोटे अधिकार और लौकिक ज्ञान प्राप्त है। यह उसके वर्तमान का भाव है। यह मानवीय भाव है। इसका रूपान्तर ब्रह्मभाव में हो जाना चाहिए। सोचो कि तुम ब्रह्म हो। अनुभव करो कि तुम शुद्ध और सर्वव्यापी ज्ञान, प्रकाश ओर चैतन्य हो। समझो कि तुम अमर हो। विचारों कि तुम सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी हो। विश्वास करों कि तुम साक्षी हो। साक्षी और अकर्ता के भाव अपने मन में आने दो। 'मैं कर्ता नहीं हूँ, में भोक्ता नहीं हूँ'—इस प्रकार के भावों को मन में लाने का अभ्यास किया करो। अशुद्ध भावनाएँ पराभूत हो जायेंगी और तुम कर्म-बन्धन को तोड़ सकोगे। वेदान्त यही सिखलाता है कि नाम और रूप की अवहेलना कर, हर जगह ब्रह्म को ही देखों और उसी का अनुभव करो। वेदान्त तुम्हें उचित विचार और गम्भीर ध्यान से आत्म-भाव का विकास करना सिखलाता है।

जब कोई बाहरी विचार हमारे मन पर अधिकार स्थापित करने लगता है तो उस विचार की प्रकृति के अनुरूप एक प्रकार की मानसिक स्थिति और भावना हमारे अन्दर आती है। अपने शत्रु के विषय में कुछ देर सोचो तो तुम्हारे अन्दर शत्रुभाव आने लगेंगे। दया या विश्वप्रेम के विषय में सोचो तो प्रेम या करुणा का भाव प्रकट होगा। विश्व-सेवा की सोचो, सेवा भाव तुम्हारे अन्दर आ जायेगा। भगवान कृष्ण और उनकी वृन्दावन-लीला का विचार करो तो कृष्ण-भिक्त का जागरण होगा। भावना और विचार साथ-साथ चलते हैं। विचार को भावना से अलग नहीं किया जा सकता, उनका सम्बन्ध आग और उसकी गर्मी के समान अभिन्न है। सतर्क अन्तरावलोकन द्वारा सदा मानसिक परिस्थितियों का ध्यान रखना चाहिए। मन में किसी प्रकार का नकारात्मक या अनिश्चित भाव प्रकट नहीं होने देना चाहिए। कलुषित भावना को शुद्ध-भावना में बदल देना चाहिए। स्थिर-भावना अनिश्चित भावनाओं को पीछे धकेल देती है। सात्त्विक भावना मूल्यवान् सम्पत्ति के समान है।

सात्त्विक भाव की लड़ी द्वारा अपने को ब्रह्म से सम्बद्ध किये रहना चाहिए। आरम्भ में अपने आसुरी और दैवी भावों में घमासान युद्ध होगा। आसुरी स्वभाव दैवी स्वभाव पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करेगा। निरन्तर अभ्यास से ही अन्ततः सात्त्विक भाव की विजय हो सकेगी।

भाव पर भोजन का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। सात्त्विक भोजन से सात्त्विक भावों का उदय होता है। अपने को अनन्य भाव में स्थापित करने का अभ्यास करो। पन्द्रह दिनों तक केवल फल और दूध का आहार सेवन करो और



तब मन के भाव एवं स्वभाव में परिवर्तन देखो। तुम्हारा मन सात्त्विक भावना से आश्चर्यजनक शान्ति की प्राप्ति कर रहा होगा। जब इस सात्त्विक भाव का उदय होगा, तब मन स्वभावतः ईश्वर की ओर दौड़ने लगेगा और समाधि का अवतरण स्वतः ही हो जायेगा।

जब भक्त सोचता है कि वह ईश्वर का सेवक है, तब उसमें 'दास्य-भाव' का आगमन होता है। जब वह सोचता है कि भगवान उसके सखा हैं तो 'सख्य-भाव' का उदय होता है। वह जब ईश्वर को वत्स रूप में देखने का प्रयत्न करता है तो 'वात्सल्य-भाव' जागते हैं। इस प्रकार वह अपनी भावना के अनुसार अपने अन्दर माधुर्य अथवा शान्त-भाव भी विकसित कर सकता है। जब वह अनुभव करता है कि भगवान सब जगह हैं तो उसमें तन्मयता का भाव आता है।

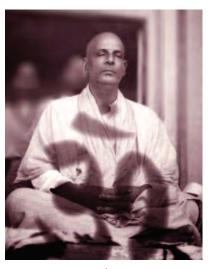
भक्त सदा यह सोचता है कि भगवान ही सब-कुछ करते हैं, वह तो उनके हाथों का उपकरण-मात्र है, केवल निमित्त है। अपने अन्दर यह भाव जगाने से वह कर्तापन और भोक्तापन का विचार त्याग देता है और इस प्रकार कर्म के जटिल बन्धनों से अपने को मुक्त करता है। इस भाव का विकास करने से भक्त पूर्ण और विकार-रिहत शान्ति प्राप्त करता है। जब कभी उसके जीवन में अच्छी या बुरी घटना घटती है तो वह कहता है—'ईश्वर ही सब-कुछ हैं। वे जो कुछ भी करते हैं, अच्छा ही करते हैं। ईश्वर न्यायी हैं। ईश्वर की इच्छा ही सम्पन्न होती है। सब-कुछ भगवान का हैं। में भगवान का हूँ, सब भगवान के हैं।' इस अभ्यास से वह जीवन की सभी परिस्थितियों और दशाओं में प्रसन्नचित्त रहता है।

भक्त और वेदान्ती के भावों में यह भेद है। वेदान्ती साक्षी और अकर्ता का भाव ग्रहण करता है, भक्त निमित्त-भाव और दास्य-भाव का विकास करता है। वेदान्ती अपने को अद्वैत ब्रह्मस्वरूप मानता है, भक्त अपने में द्वैत भावना अर्थात् भक्त और भगवान की भावना विकसित करता है। वह भगवान का पूजन करता है। अन्ततोगत्वा भक्त भी ज्ञानी के समान ज्ञान की चरम अवस्था प्राप्त करता है। केवल आरम्भिक साधना और भाव में भेद होता है। अन्त में दोनों एक ही समतल भृमि पर आ मिलते हैं।

धनी या विद्वान् व्यक्ति गर्व का भाव ग्रहण करते हैं। सच्चे संन्यासी में समदर्शिता, एकत्व और प्रेम का भाव रहता है। प्रत्येक मनुष्य में उसके स्वभाव और गुणों के अनुसार अलग-अलग भाव होता है। पिता और पुत्र का सम्बन्ध, पित और पत्नी का सम्बन्ध, नौकर और मालिक का सम्बन्ध प्रेम के विभिन्न पक्षों का विकास करता है। यदि इस प्रेम को पिवत्र और उच्चतर दैवी आवेगों में रूपान्तरित कर दिया जाए तो इसके क्षुद्र आवेग परिमार्जित किये जा सकते हैं। निम्नतर भाव का परिवर्तन उच्चतर दिव्य भावों में होता है। दिव्य भावों के विकास के लिए सांसारिक सम्बन्धों का समन्वय प्रारम्भिक शिक्षा के समान है, यह बात कभी न भूलो।

### प्रतिपक्ष-भावना के नियम

मान लो कि तुम दु:ख की भावना से सन्तप्त हो। एकान्त में शान्तिपूर्वक बैठ जाओ। अपने नेत्र बन्द कर लो। अपने अन्दर जागृत हुई नैराश्य-भावना के कारणों का पता लगाओ और परिहार की चेष्टा करो। प्रतिकूल भाव का विचार ही इसके निवारण का सबसे अच्छा तरीका है। सकारात्मक विचार सदैव नकारात्मक विचारों पर विजय पाते हैं, यह प्रकृति का सुन्दर नियम है। अब दृढ़ता से प्रतिकूल भाव की बातें सोचो। विषाद के प्रतिकृल आनन्द की बातें सोचो। आनन्द से क्या-



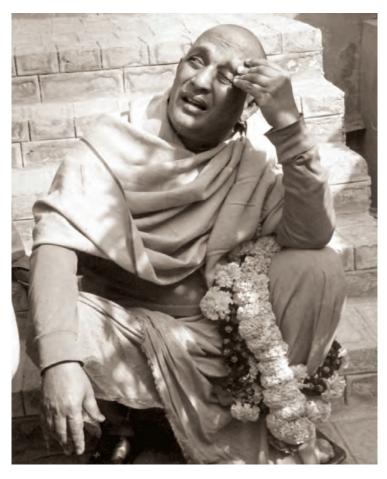
क्या लाभ होते हैं, वह सोचो। ऐसा अनुभव करो कि तुम्हें वास्तव में वह गुण प्राप्त है। बार-बार मन में इस सूत्र को दोहराओ—'ॐ आनन्दोऽहम्।' अनुभव करो कि तुम अत्यन्त सुखी हो। मुस्कुराना आरम्भ करो और अनेकों बार हँसो। किसी राग का अलाप करो, जिससे तुममें प्रफुल्लता आयेगी। गाने से विषाद दूर किया जा सकता है। बार-बार जोर से 'ॐ' का उच्चारण करो और खुली हवा में इधर-उधर दौड़ो। इन प्रयोगों से विषाद दूर हो जायेगा।

यह नियम राजयोग में 'प्रतिपक्ष-भावना' के नाम से जाना जाता है। यह सबसे आसान नियम हैं। बलपूर्वक संकल्प का उपयोग कर विषाद को हटाने से संकल्प को भी चोट पहुँचती है। इसके प्रयोग में दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है, अन्यथा विषाद का दमन सम्भव नहीं होगा। साधारण मनुष्यों को इस प्रयोग से सफलता नहीं मिलेगी। नकारात्मक भावना के बदले प्रतिकूल सकारात्मक भावना रख देने से विषादमयी भावना जल्दी दूर हो जाती है, यही सबसे आसान रीति है। कुछ काल में विषाद जैसी निम्न भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं। इसका अभ्यास और अनुभव करो।

यदि तुम बार-बार असफल भी रहो तो भी इसका अभ्यास करते जाओ। कुछ अभ्यास और स्थिरता के बाद सफलता अवश्य मिलेगी। सभी निम्न भावनाओं के साथ यह नियम बरता जा सकता है। यदि तुम्हारे भीतर क्रोध की भावना प्रबल है तो प्रेम के विचारों को अपने अन्दर जगाने के प्रयोग करो। यदि काम-भावना उपद्रव कर रही है तो ब्रह्मचर्य के लाभों के बारे में सोचो। यदि बेईमानी की भावना प्रबल है तो ईमानदारी, पवित्रता आदि के सम्बन्ध में सोचो। यदि कृपणता के विचार प्रबल हैं तो दान और दानी व्यक्तियों के सम्बन्ध में सोचो और दान के प्रयोग करो। यदि मोह प्रबल है तो विवेक और आत्म-विचार के सम्बन्ध में सोचो। छल-कपट की भावना प्रबल होने पर निष्कपटता और उसके लाभों के बारे में सोचो। यदि द्वेष की भावना प्रबल है तो भद्रता और उदारता के विषय में विचार करो और उसके प्रयोग करो। यदि कायरता सबल है तो साहस की बातें सोचो। इस प्रकार नकारात्मक भावनाओं को प्रतिपक्ष भावनाओं से टाला जा सकेगा और आपकी स्थिति सामान्य हो जायेगी। किन्तु इसके लिए निरन्तर और सतत् अभ्यास की आवश्यकता है। ■

# Dealing with Negativities

Swami Satyananda Saraswati



I never controlled my anger, never tried to; I never repented for it, I did not have any guilt about it, I did not find any remedy for it, nor did I search for any. But I know one thing: because of my anger, all my nervous energies were pushed to one side and I did not have any problem with all the other vikaras, greed and the rest.

Of course, religions do not like these things. If you have anger, passion, hatred or jealousy, all the preachers and teachers say, "Don't have jealousy. Be above hatred. Don't harm or injure anyone. Practise goodness and virtue." I think that by this process you are delaying your evolution. You are holding these things back, whereas they have to come out. Of course it is difficult. When you get angry, other members of the family don't like it. When you are jealous and you hate, you make yourself unhappy and unpopular and spoil your mind. From that point of view, it is definitely not good to get angry.

Now, what should one do? In my opinion, all these natural forces must be channelled, they have to be sublimated. There are different methods of doing that, not just one. This channelling takes place by involving yourself in some sort of dedicated service or artistic expression. Through art you can project your hatred, your passion, your frustration. After all, what do artists do? They only spill their nature out in the form of ink and paint. What do poets write? Where do they write it from? They are only spilling themselves over in the form of black and white.

Whether it is poetry, art or service: that is the way through which you channel your natural emotions. Some form of channelling has to take place so that you don't suppress your natural instincts. If you suppress your natural instinct just because your children or husband or wife or somebody is getting affected, then some other problem will come up, either in your nature or in your physiological system or in your behaviour. If you suppress more, some disease can also manifest, asthma for example. Even cancer is caused due to suppression. Therefore, suppression is no good.

You have to do two things at the same time. First, you have to ease or simplify the religious views on these natural instincts. You have to change the views that religion has about hatred, passion, fear and anger. In order to change those religious views, you have to depend on a different category of teachers:

those who tell the truth. Second, you have to deal with them in a scientific way.

What I am saying is not that easy. I won't say that one should get angry. The point is, how much to hold back. Anger is spontaneous, you don't plan it, but there are many things which you are asked to suppress. Society has created the institution of marriage as one way of dealing with the sexual instinct. Then why should we not create an institution for people who get angry? In the olden days every house in India had a *kopa bhavan*, 'the anger house'. When you became angry, you would go there. If you wanted to deal with the problems of your anger, you had to deal with them only in that room, not in the kitchen, not in the drawing room, not while driving the car and not while having a hot cup of tea.

What did Kaikeyi do? When she was angry after the injections of Manthara, she went into the kopa bhavan, loosened her hair, threw away all her nice clothes and just lay down there. Dasharatha came to know about it so he went there and said, "What is the matter with you?" She said, "I want my son to be the successor to the throne and the son of Kaushalya must be exiled." He said, "I can't accept it, but I will do it." Then she came out of the kopa bhavan.

You have a dining room, a drawing room, a bedroom, a bathroom, and now you must have a kopa bhavan. When you are angry, go into it. If you want to scold someone, scold in that room. Say whatever you like there, but not out of it. That's the point.

You see, you have to deal with these things so scientifically that you don't injure anybody, not even yourself, because they are part of your being. They are like the scales of a serpent: part of your life. They are there and they will be with you for a number of years; you have to live with them in a very cordial way. Your natural tendencies should also understand that you are dealing with them in a very civilized way, not in a savage way.

# साधना में भावना का महत्त्व

### स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

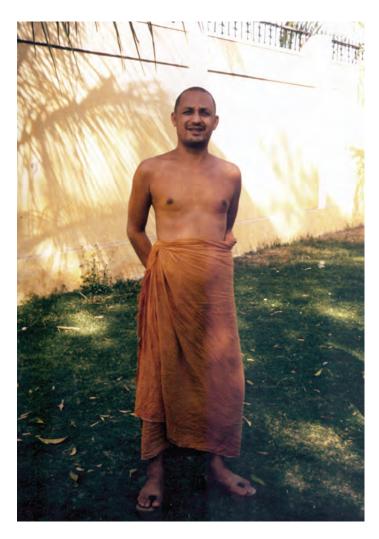
आध्यात्मिक-साधना करने वालों को साधना के साथ-साथ भावनाएँ भी बनानी पड़ती हैं। प्रथमत: 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की भावना बनानी पड़ती है। ब्रह्म ही सत्य है और यह जगत् मिथ्या है, ऐसा भाव रखकर साधना करने में अच्छी प्रगति होती है।

दूसरा भाव आता है कि यह जगत् एक स्वप्न है जहाँ दु:ख ही दु:ख हैं। ऐसा विचार जब साधक अपने मन में बनाता है, तब उसके अन्त:करण में वैराग्य और निश्चिन्तता के विचार उठते हैं। वैराग्य और निश्चिन्तता के बिना लाख प्रयत्न करने पर भी चित्त एकाग्र नहीं होता, क्योंकि जब हम ध्यान करने के लिए बैठते हैं तब हमारा मन बार-बार बाह्य विषयों का चिन्तन करने लगता है, अपने अन्तर के संस्कारों में रमने लगता है और पुरानी बातों का स्मरण करने लगता है। ऐसी स्थिति में वैराग्य के भाव से ही मन भूत और भविष्य की चिन्ता में भटकने से बचता है। इसलिए वैराग्य को जगाने के लिए मन में यह भाव लाना जरूरी है कि यह संसार एक दीर्घ, दु:खमय स्वप्न है।

ध्यान को सफल बनाने और आध्यात्मिक जीवन को समुन्नत करने के लिए यह भावना निरन्तर बनानी पड़ती है कि संसार के सुख और दु:ख दोनों क्षणिक हैं, अस्थायी हैं। सुख-सम्पत्ति को स्थायी मानने से अहंभाव पैदा होता है और दु:ख को स्थायी मानने से कर्म कुण्ठित होता है, जीवन निराशावादी बन जाता है। जब दोनों पक्षों को साधक क्षणिक मान लेता है तब धैर्य और विनम्रता का उदय होता है और मन में तनाव नहीं रहता।

आध्यात्मिक मार्ग में यह भाव रखना बहुत आवश्यक है कि भगवान की इच्छा ही पूरी होगी। जब मनुष्य के जीवन में बहुत तकलीफें आती हैं, विघ्नबाधाएँ उपस्थित होती हैं, तब मन घबरा उठता है। मन की यही घबराहट ध्यान की अवस्था में मानसिक जीवन को झकझोर देती है। चेतना ज्यों ही अन्दर जाना चाहती है, जीवन की घबराहट उसे बाहर खींचने लगती है। अत: ध्यान में उन्नति करने के लिए यह भाव जरूरी है कि मनुष्य भगवान की कृपा से दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर बढ़ रहा है। ऐसा सोचने से संकल्प बल मिलता है और शरीर की अनेक बीमारियों से मुक्ति मिलती है। अविद्याजन्य विचारधारा और दर्शन को लेकर जो मनुष्य चलता है उससे ध्यान में मन जो विप्लव मचाता है, वह विक्षेप भी दूर होता है।

आध्यात्मिक साधकों को हमेशा अपने मन में यह विचार बनाए रखना चाहिए कि मैं शरीर नहीं बल्कि आत्मा हूँ। उपनिषद् के अनुसार अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम् या सोऽहम् की निरन्तर भावना बनाये रखने से शरीर के साथ जो लगाव हो गया है



वह छूट जाता है, क्योंकि सामाजिक, पारिवारिक परिवेश में हम जिस तरह सोचते हैं उससे शरीर में मन इस तरह लगा रहता है कि ध्यान के समय मन शरीर को नहीं छोड़ता। अच्छा ध्यान लगने पर भी मन को भय लगने लगता है कि वह शरीर से अलग हो रहा है, कहीं उसका सम्बन्ध शरीर से सदा के लिए छूट न जाए। यह भय ध्यान को भंग कर देता है। इसलिए शरीर के साथ मन के इस लगाव को तोड़ने के लिए इस सत्य को याद रखना चाहिए कि मैं शरीर नहीं हूँ, मन नहीं हूँ — आत्मा हूँ। हमें यह भावना भी बनाये रखनी चाहिए कि मैं उस महान्, दिव्य शिक्त की

हम यह भावना भा बनाय रखना चाहिए कि में उस महान्, दिव्य शाक्त का उपस्थिति का अनुभव कर रहा हूँ। जब मनुष्य उस परम शक्ति की उपस्थिति का

अनुभव नहीं करता तब तकलीफ और निराशा की भावनाएँ उसे दबोचती हैं। वह कर्म करने योग्य नहीं रह जाता और मृत-तुल्य जीवन बिताता है।

मनुष्य की गतिशीलता का रहस्य शिक्त और प्रेरणा में है। जीवन के लौकिक और अलौकिक, दोनों क्षेत्रों में शिक्त और प्रेरणा की अत्यधिक आवश्यकता है। इन दो गुणों के अभाव में हमारी स्थिति इंजिन-हीन मोटर की तरह होती है। उपर्युक्त गुण हमारे अन्दर छिपे होते हैं, किन्तु हम जिस वातावरण में रहते हैं वहाँ इन शिक्तयों का हमें पता नहीं चलता, वह बतलाया भी नहीं जाता। इन शिक्तयों को जगाने के लिए उस परमचेतना की उपस्थिति का अनुभव बढ़ाते जाना चाहिए।

साधक को यह भावना भी बनाये रखने की जरूरत है कि सारा संसार एक है। आत्ममय संसार मेरा है और मैं सब में हूँ। इस भावना के जगने से हमारा व्यक्तित्व विस्तृत होता है, एकता की भावना प्रबल होती है, दया का भाव उपजता है और ईर्ष्या-घृणा जैसे मनोरोग दूर होते हैं। ईर्ष्या आदि को लोग पाप मानते हैं, पर वह पाप या अधर्म नहीं है, वह दुर्गुण भी नहीं है, इन्सान की कमजोरी भी नहीं है, व्यक्तित्व की व्याधि है। जिस प्रकार कीटाणु से शारीरिक रोग होते हैं, उसी प्रकार व्यक्तित्व में छिपे सूक्ष्म कीटाणुओं से ये रोग उत्पन्न होते हैं। ये रोग मन के अन्दर सत्त्व की कमी से होते हैं। संसार ईश्वरमय है और सब कुछ मैं हूँ, यह सत्त्व-वर्धक भाव है। इस भाव को जगाने से ही प्रेरणा और शक्ति की कमी भी दूर होगी और तभी ध्यान लगेगा।

साधक को यह भाव भी बनाये रखना चाहिए कि मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा कुछ नहीं है और स्वयं कुछ भी नहीं कर सकता। इससे अहंकार नष्ट होता है। आत्म-निवेदन और शरणागित प्रबल होती है। यह भक्तों का तरीका है। संसार में जितने बड़े-बड़े भक्त हुए, उन्होंने अपने व्यक्तित्व को क्षुद्र जलबिन्दु माना और ईश्वर को सिन्धु। ऐसा मानने से ध्यान में उन्नति होगी और सूक्ष्म शरीर का मल दूर होगा।

दूसरा तरीका यह है कि मैं सब हूँ, सारे जगत् में परिव्याप्त हूँ। यह वेदान्तियों की भावना है। जैसे स्वर्णाभूषण अनेक स्वरूप में गढ़े जाते हैं, उनके नाम भी भिन्न होते हैं, पर गुण भिन्न नहीं होता, सब में सोना ही रहता है, वैसे सांसारिक धर्म के स्वरूप सब भिन्न दिखाई पड़ते हैं पर परम तत्त्व एक ही है।

बहुत-से लोग शास्त्र और धर्म की अनेक पुस्तकों को पढ़ लेने के बाद भी यह नहीं समझ पाते कि आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्हें कौन-सा मार्ग स्वीकार करना चाहिये। इसके लिये भगवान का सतत् स्मरण, सद्गुणों का विकास और अपने सभी कर्मों का आध्यात्मीकरण आवश्यक है। आरम्भ में भगवान के सतत् स्मरण में विघ्न उपस्थित अवश्य होगा, पर बार-बार के अभ्यास से नाम-सुमिरन स्वाभाविक हो जायेगा। नाम-सुमिरन का आध्यात्मिक साधना में बड़ा महत्त्व है।

सतत् नाम-सुमिरन से जब हृदय पवित्र हो जाता है तब कुण्डलिनी जगने लगती है और आत्मज्ञान की भी प्राप्ति हो सकती है।

सद्गुणों में सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य प्रधान हैं। इनमें से किसी एक गुण के विकास से बाकी सद्गुणों का विकास साधना के द्वारा स्वतः हो जाता है। साधना के मार्ग में अपने तमाम कर्मों का आध्यात्मीकरण आवश्यक है। भाव यह होना चाहिये कि 'हे ईश्वर! मैं तुम्हारा निमित्त मात्र हूँ। जो कुछ भी करता हूँ वह तुम्हारी प्रेरणा से। इसलिये तुम मुझ पर कृपा करो।' इस तरह की समर्पण भावना बनाये रखने से निर्बल मन सबल बन जाता है और अन्दर में छिपी महान् शक्ति जागृत होने लगती है।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि लोग आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाओं को दिल में संजोये तो रहते हैं पर उनकी क्रियाशिक्त क्षीण रहती है। इसलिये अपनी निर्बलता को दूर करने के लिये मन में शरणागत भावना बनी रहनी चाहिये। इससे अभिमान स्वत: दूर होता जायेगा और जीवन में दिव्य प्रकाश तथा शिक्त का स्वाभाविक अवतरण होने लगेगा।

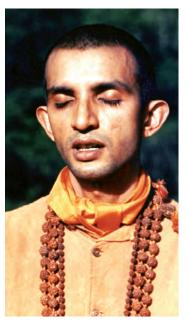
हमारे संत-महात्माओं और ऋषि-मुनियों ने ज्ञान प्राप्त करने के बाद बार-बार यह बतलाया कि आत्म-ज्ञान में बहुत आनन्द है। यह अनन्त ज्ञान है जिसे अन्दर की ब्रह्माकार वृत्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी आज लोग सांसारिकता में पड़े हैं, क्यों? इसका मूल कारण आध्यात्मिक जीवन के प्रति उनका आलस्य है। उच्च जीवन के प्रति उनकी लापरवाही उसी प्रकार बनी है जिस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में थी, क्योंकि मनुष्य बाहरी प्रलोभनों को छोड़कर आध्यात्मिक जीवन के प्रति आकृष्ट नहीं होता।

अनेक धार्मिक सभाओं और साधना-गोष्ठियों में जाकर सुन्दर प्रवचनों को सुनने, वर्षों तक धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने के बाद भी मनुष्य कुछ कर नहीं पाता है। क्यों? इसलिए कि जगत् के बाहरी पदार्थों में उसकी जितनी श्रद्धा है उतनी आध्यात्मिक जीवन के प्रति नहीं। यही कारण है कि योग और साधना की आवश्यकता जानने पर भी वह उसका अभ्यास नहीं कर पाता। यदि मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान चाहता है तो उसके मन में यह विश्वास जमना चाहिये कि सच्चा आनन्द उसके भीतर ही है, बाह्य पदार्थों में नहीं।

संसार जब विश्वास और श्रद्धा पर टिका है तब संसार के निर्माता ईश्वर के प्रिति श्रद्धा और विश्वास क्यों नहीं जमता? सम्भव है आपके अन्दर श्रद्धा हो, संत-महात्माओं द्वारा समझायी गयी कल्याण की बातों को आप समझो भी, पर जब तक किसी बात को क्रिया में नहीं लाओगे तब तक लक्ष्य पूर्ति में सफलता नहीं मिलेगी। साधना में पहले श्रद्धा और फिर क्रिया होनी चाहिये। अतः आध्यात्मिक जीवन में साधना करने के साथ-साथ विश्वास और श्रद्धा को जागृत रखो और क्रिया में अनवरत लग जाओ। ■

# Understanding Bhava Shuddhi

Swami Niranjanananda Saraswati



Bhava shuddhi means internal purification, or, in general terms: balancing and harmonizing the emotions and sentiments. To understand bhava shuddhi you have to understand what is bhava.

#### What is bhava?

Bhava is generally translated as sentiment, feeling or emotion, a condition, a state. It can mean different things depending on the context. However, if you look into Sanskrit, the word bhava comes from the root bhu, which means 'to be'. 'To be' indicates

something that has come to its completion. For example, in the Gayatri mantra, the first bija mantra, *Om bhu*, means stability and earth. The earth is the final product of evolution; there is no other product beyond earth. Thus, *bhu* is acquiring an identity and experiencing and realizing that identity, being that identity. Bhu means this is what you are, this is what you become. From this perspective, *bhava* literally means 'being', being the person you are. Another derivative of this is swabhava, which translates to nature. The prefix *swa* means 'me', 'self', so *swabhava* is the nature of the self. Swabhava is identified as nature and bhava is identified as the condition in which you are.

The bhava or swabhava is not only emotional, it reflects the whole state of your being: physical, psychological, pranic, internal, and also transcendental. All the different koshas of the body experience the same bhava, the same nature of what you are at a given moment. A gross example: the experience of fear or anger. Are they limited only to the body, mind and prana? Or do these conditions influence the entire range of human expression? If there is fear, its effect is experienced in annamaya, pranamaya, manomaya, vijnanamaya, at all levels. The fear becomes the bhava, the condition that you are living in. Similarly, if there is anger, it is physical, pranic, psychological: you are living the same bhava at all levels.

When you live the same bhava continuously, it becomes your swabhava. It becomes your innate nature in the course of time. It is not only one aspect of your life that becomes affected by a bhava, but the entire personality at all levels. Therefore, bhava shuddhi is purification of all these conditions. I am not using the word 'emotion' or 'sentiment'; I am using the word 'condition', a condition which is overpowering the whole nature. Bhava shuddhi is the effort made to purify these conditions. After their purification, you attain *shuddha bhavana*, the pure condition. Thus, bhava shuddhi is the process and shuddha bhavana is the result.

## The beginning of bhava shuddhi

To practise bhava shuddhi, you have to recognize the existing bhava at all the levels. That is stage one of developing that awareness. You have to recognize the negativities. In fact, I would not use the word negativity here; I would use the phrase 'obstructions to positivity'. Those things that create obstructions in the expression of your positivity have to be seen. Whatever creates obstruction is not negative. Everything cannot be judged as negative and positive, good and bad, black and white. You should not even attempt to classify things as negative or positive, for that is only from your perception, your level of understanding. That is why I am calling them obstructions to expression of the positive nature. These obstructions are what you have to become aware of in bhava shuddhi.

The human nature is basically tamoguni. This tamoguna is like the gravitational field of the material nature. As long as you are in this gravitational field, the tamoguna qualities will be predominant. Tamoguna highlights the instinct of survival and your awareness about yourself. 'I' becomes the centre of your awareness. Your needs become the centre of your life. This self-oriented awareness is tamoguna. In such awareness, the behaviours and expressions are tamasic. When you are in this dimension, you find that there are many obstructions in the expression of your positive and creative nature. These obstructions or impediments can come up in the form of a mood, a condition, a thought, an emotion, a response, a reaction, anything.

Thus, in bhava shuddhi you have to observe not the positive you but the obstructed you. You have to observe the obstructions: 'I am feeling this wave of anger. I can feel the rise of my blood pressure. I can feel the heat in my head. I can feel the tightening of my body in that wave of anger.' At that moment, instead of giving in to the emotion, to the condition of anger, stop. Separate yourself. Observe. Only when you are able to observe and see the obstruction in you, can you rectify it. Those of you who have seen the movie Star Wars will know that Luke was a Jedi fighter and he could fight very well. However, when he goes to Yoda for the final teaching to become the master, he has to confront his negative self. Similarly, in the practice of tattwa shuddhi, the papa purusha is identified, not the punya purusha. You have to have that strength and the courage to look at yourself from the perspective of negativity only. That is when you can practise bhava shuddhi.

People think that this can be attained with practice of techniques like antar mouna, yoga nidra, and so on. No, antar mouna is not in relation to bhava. Antar mouna limits itself to thought-patterns only. It does not go into the conditions. Thought-pattern is only one activity, representing the manas. It does not include the pranic, the physical, the vijnanamaya or the anandamaya levels. It is a one-dimensional activity: mental. All these

practices that you have done so far will not lead to bhava shuddhi, as no training has been given to observe the conditions.

In antar mouna you are taken through seven stages, starting from the basic cultivation of awareness to the last stage of being able to guide the thoughts. Now, bhava shuddhi comes after having gone through the practices of pratyahara. Here, one has to be able to develop the ability to observe the obstructed self, the negative self and flood it with positivity. In other practices, you are told to identify a negative and convert that into the positive. In bhava shuddhi, you have to identify the negative and flood it with the positive, not convert it. There is a difference between conversion and flooding. This has to be understood in the right context.

All other yoga practices support reaching the condition of bhava shuddhi. Many times people ask, "When I practise my yoga, my meditation, I become acutely aware of the suppressed and the restrictive, the limiting and the negative in me. How do I deal with that?" Until now, no precise answer has been given to this, as the process was not revealed. Now the answer can be given: the way to manage the negativity that stems from your becoming self-aware, lies in bhava shuddhi.

## Bhava shuddhi and prana

Bhava shuddhi is intrinsically related to prana. It is closely connected to the pranic behaviour and expression, and sometimes it even becomes difficult to identify which is the inner condition and which is the pranic condition. For example: anger. When you are experiencing anger, what are you experiencing in your physical body? Prana: hyperactive, agitated prana. A mental state of anger is being converted to a pranic activity in the body. It is creating a response which is pranic in nature. Another example: fear. You see a snake at night and you are ready to run a hundred kilometres an hour. It is not the mind that makes you do it; it is the prana. The fear is mental, but the response to fear is pranic. Anger is psychological, but the response to anger is pranic.



There are many different levels of prana. The pranas that operate in the body are different from the pranas that operate in the mind. You know that prana at the cosmic level is identified as mahaprana. You know that prana in the physical body is classified as prana, apana, samana, udana and vyana. You also know that the lesser functions of the body like sneezing, belching, blinking, etc. are governed by mini-pranas: devadatta, kurma, dhananjaya, krikara, naga. Beyond these physical groups of pranas, what other concept of prana do you have? None.

Think about this: from mahaprana comes the material prana and the mental prana. The material prana is known *as prana shakti* and the mental prana is known as *chitta shakti*. Within prana shakti, you have identified prana, apana, samana, udana, vyana and also devadatta, kurma, dhananjaya, krikara, naga. What do you have in chitta shakti? Just one chitta shakti and nothing beneath? There are other pranas here too.

There are different pranas that control the mental functions as well. They are identified as *manas-buddhi* prana, or the

surface mind prana. It is the interactive mental prana which you are using right now. Then there is *chitta-ahamkara* prana, the deeper mind prana. Beyond these are *sukshma sharira* prana, the psychic body prana; *karana sharira* prana, the higher body prana; *ananda sharira* prana, bliss body prana; and finally, *poorna* prana, the whole prana.

The physical prana is the *sthoola prana*, the gross prana, and six pranas have been identified as subtle pranas. Just as prana, apana, samana, udana and vyana are identified at the physical level, in the same manner manas-buddhi prana, chitta-ahamkara prana, sukshma sharira prana, karana sharira prana, ananda sharira prana and poorna prana have been identified in the subtle dimension.

Another understanding that you must have is that the prana from sthoola sharira up to sukshma sharira, four levels, can be tamasic, rajasic or sattwic: interchangeable. Up to these levels, you can guide and control them. Beyond that, from karana sharira upwards, in the remaining three levels, the pranas are always pure.

To practise bhava shuddhi, you have to recognize the state of prana at each of the lower levels. If the prana is tamasic, it has to be sattwicized. Coming back to the example of anger. If you are experiencing a wave of anger where the pranas are highly agitated, how can they be pacified? Through reflection on thought? No. It has to be done by some other method, for it is when all the pranas are in harmony and sattwic that you achieve bhava shuddhi. The physical condition, the mental condition and the subtle conditions all combine to create a bhava.

#### Bhava shuddhi and pratyahara

There is a sentence used in Hindi, "Usaka hava-bhava achha hai" – "This person has good hava-bhava." The sentence is used quite commonly to denote the nature of an individual. If somebody's hava-bhava is achha, it means that he or she has a pleasing, optimistic, joyous and uplifting personality. You

are referring to the whole nature of the individual, not to any specific aspect. Therefore even in this context, the idea of bhava, the condition, is identified and recognized by another person.

The condition is something that you are expressing, and the aim of bhava shuddhi is the changing of the lower conditions into better, higher conditions. When you want to change your negatives, or the obstructions, to something positive, many times you feel that you are not able to, and you keep falling back in the same old pattern. Whenever a trigger comes, the same pattern gets reactivated and you again go through the same suffering that you have been through previously. That is because there is no awareness of bhava shuddhi. You have to recognize that bhava shuddhi is the last component of pratyahara before dharana begins.

Once you go through the initial stages of pratyahara and develop the ability to observe yourself, then you move into other aspects. For example, when you begin to practise yoga nidra, you are at first developing the ability to experience and visualize your thumb, first finger, second finger, third finger. If you go deeper, then it is the experience of lightness, heaviness, pain, pleasure, heat, cold. You can go even deeper into the experience of visualizations and living those visualizations. Gradually you are working with each aspect of the mind to strengthen that area. From cultivation of awareness in yoga nidra, you move into other practices. You practise antar mouna, thought observation, and then eventually go into different techniques of concentration and meditation. After going through it all, before entering dharana, you come to bhava shuddhi.

All other practices of pratyahara converge in bhava shuddhi to create a condition which you have to observe and deal with as a total unit. In other practices of pratyahara, you are dealing with individual components of the mind. If it is ajapa japa, it is breath and mantra, nothing comes in between. If it is chidakasha dharana, you are only seeing the chalk and the blackboard, nothing comes in between. If you are

doing antar mouna, you are only dealing with the thoughts: observing, stopping, creating. Nothing other than that. All these individual components which you have practised in the past in different groups of meditations, converge together and give the idea of the individual as one whole integrated unit. Bhava shuddhi begins from that point onwards. After bhava shuddhi, one moves into, or rather slides smoothly into, dharana. One slides smoothly into dharana as the background is ready.



#### Flooding, not converting

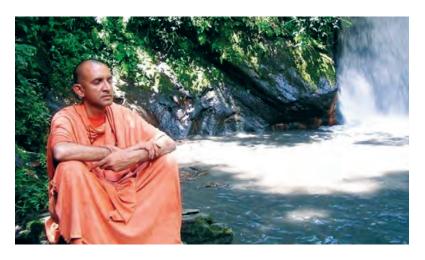
As mentioned, you can access only four levels of prana from where you are: the sthoola sharira prana, the manas-buddhi prana, the chitta-ahamkara prana and sukshma sharira prana. These are the four steps that human beings can climb; they cannot climb to the fifth or sixth or seventh. Those rungs of the staircase do not exist, except in the blueprint. That is because those three are beyond human effort. At the four basic levels, you can identify the prana, the mood, and work with them to gradually pacify them. There is a gradual process of purification and harmonization of prana and bhava together.

When it comes to the karana sharira, the area of luminosity and not of bondage, you don't have any control there. You can somehow move through the areas of bondage as they are self-created and therefore self-openable. You can open a knot that you yourself have tied, but not the ones about which you have no understanding. This is akin to the idea that Sri Aurobindo had given: grace has to descend, intellect cannot reach there.

This is where the ideas of flooding and conversion come in. Conversion is going from bottom up. Your thoughts: convert bad into good. Emotions: convert bad into good. You are converting. That you can do up to sukshma sharira. After that, you cannot do anything, for there is nothing beyond for you to convert. Or if something is there, you don't have the ability to change that. At this point, something has to come down.

Remember that a bigger force will always overpower smaller forces. A bigger power or strength will always overpower little powers and little strengths. Therefore, if you bring down and flood the lower levels with the power of the higher levels, the whole being, the whole condition will be flooded. What happens when you take a shower? The water wets the whole body. If you use a mug and bucket instead, only one area of the body may be wet, and you decide which part you want to wet. However, once you get into a shower, you cannot decide which part will become wet; the whole body is going to get wet. Just as a shower floods everything, rains flood everything, grace also comes and floods everything. The flooding is where the real experience of bhava shuddhi takes place.

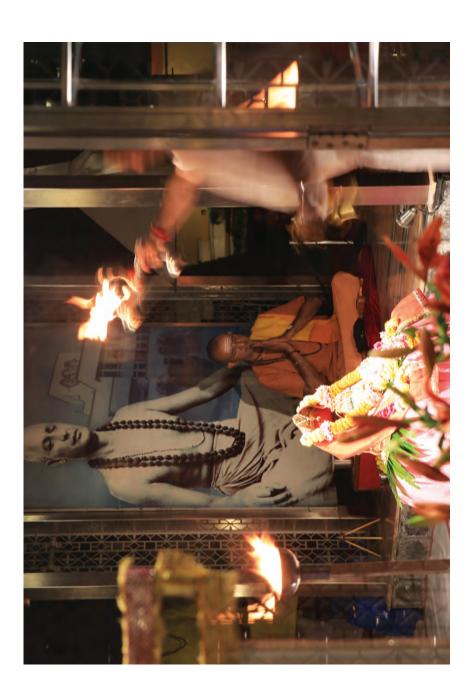
– 27 June 2017, Adhyatma Samskara Sadhana Satra, Satyam Udyan, Munger

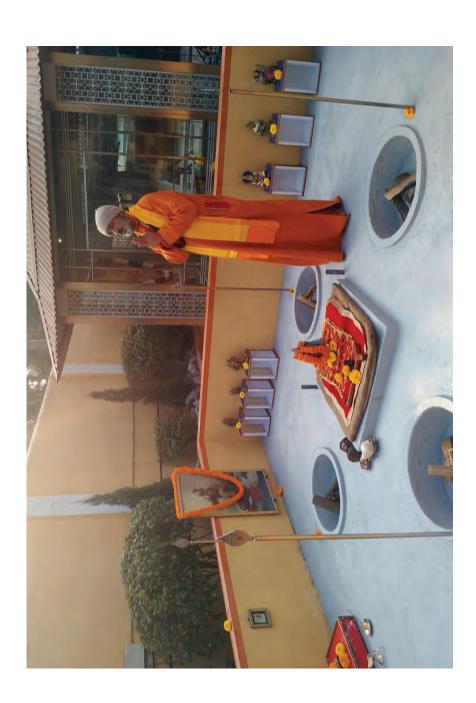




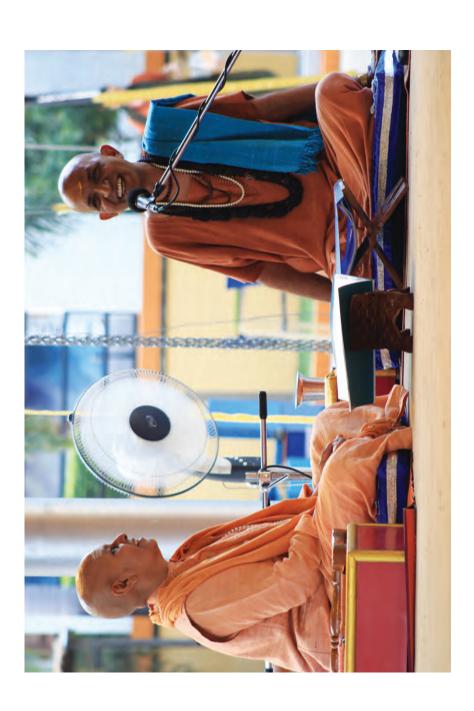


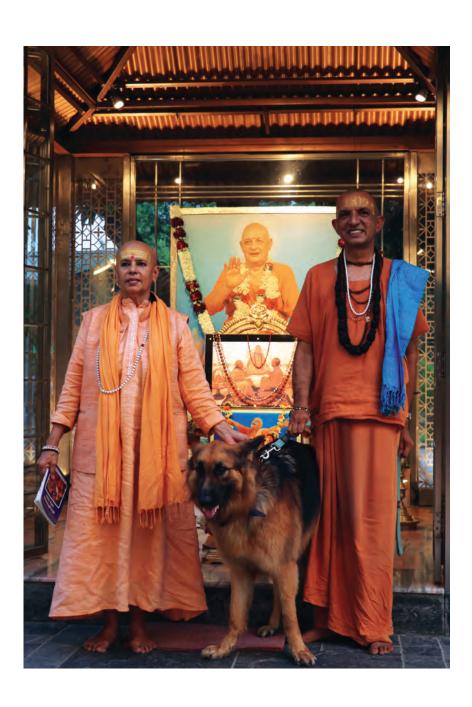












# शुद्धि के स्तर

### रवाभी निरंजनानन्द सरस्वती



हमारे परमग्रु, स्वामी शिवानन्द जी ने सबको आत्मशुद्धि के लिए प्रेरित किया, मोक्ष के लिए नहीं। हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी ने भी अपने शिष्यों को मोक्ष के लिए नहीं, बल्कि कर्म के द्वारा आत्मशुद्धि के लिए ही प्रेरित किया। भारत में कुछ ही ऐसे आश्रम होंगे जहाँ संन्यासी लोग खुद झाड़ लगाते हैं, अपना टॉयलेट साफ करते हैं, खाना बनाते हैं और सब काम करते हैं। बाकी सभी आश्रमों में अन्य व्यवस्था होती है, वहाँ साध्-संन्यासी राजा का जीवन व्यतीत करते हैं, लेकिन यहाँ पर सब कोई एक साथ मिलकर हर प्रकार का कार्य परस्पर सहयोग के साथ करते हैं और यही शिक्षा उनको यहाँ दी जाती है। मुंगेर में अगर कोई साधु कहे कि मैं ध्यान करने आना चाहता हूँ तो उसे सीधा मना कर देते हैं कि भाई, यह ध्यानाश्रम नहीं, योगाश्रम और सेवा आश्रम है। यह पुरुषार्थ और कर्म का आश्रम है। यहाँ पर आप चौबीस घंटे बैठकर ध्यान लगा रहे हैं और कोई आपके लिए आपके कमरे में खाना ले जा रहा है, आपकी व्यवस्था कर रहा है, आपका कपड़ा धो रहा है, वह सब यहाँ नहीं करते। अगर वह करना है तो आप घर में ही कीजिए, पूरी व्यवस्था वहाँ पर है, साधु को अपना नौकर क्यों बनाते हो? घर में करो, वहाँ खाना भी मिल जाएगा, कपड़ा भी धूल जाएगा और शांति भी मिल जाएगी। चुपचाप अपने कमरे में बैठकर जप करते रहो, उसके लिए आश्रम आने की जरूरत नहीं।

आश्रम अगर आते हो तो अपने को भूलने के लिए आना चाहिए। हमारे गुरुजी हमेशा कहते थे कि जब कोई बीमार हमारे आश्रम में आता है तो हम पहली बात उसको बोलते हैं कि तुम बीमार नहीं हो, बीमारी की भावना को अपने मन से हटा दो। हमारे गुरुजी कहते थे कि कोई भी आदमी क्यों न आए, चाहे मधुमेह वाला ही क्यों न हो, दमा वाला ही क्यों न हो, कैंसर वाला ही क्यों न हो, पहली बात हम उनको कहते हैं कि तुम बीमार नहीं हो। 'मैं बीमार हूँ'-इस विचार को अपने मन से निकाल दो। जब 'मैं बीमार हूँ' के विचार को अपने मन से निकाल दोगे तो तुम स्वास्थ्य का अनुभव स्वयं करने लगोगे क्योंकि मन ही मनुष्य को रोगी बनाता है, मन ही मनुष्य को विचलित करता है। इसलिए पहले मन को ठीक करना और बीमारी के भय को दूर करना जरूरी है। 'मैं स्वस्थ हूँ' के विचार को लेकर तुम आश्रम में रहोगे तो फायदा होगा और 'मैं बीमार हूँ' का विचार लेकर रहोगे तो यहाँ गुरु-कृपा मिलने के बाद भी, हर प्रकार की शिक्षा मिलने के बाद भी तुम बीमार के बीमार ही रहोगे, ठीक नहीं हो पाओगे। अपने मन को, अपने स्वभाव को, अपने विचार को बदलना आवश्यक है। 'मैं नहीं कर सकता' का विचार नहीं आना चाहिए। अगर 'मैं नहीं कर सकता' का विचार आता है तो गेरू वस्त्र उतार दो क्योंकि 'मैं नहीं कर सकता' मात्र भोगी कहता है, योगी नहीं। यह विश्वास रखो कि मैं जो करना चाहता हुँ, अगर पूरी निष्ठा, पूरे समर्पण, पूरे प्रयास के साथ करूँगा तो निश्चित रूप से मुझे उसकी प्राप्ति होगी। यही विचारधारा लेकर संन्यासी चलता है।

इस निष्ठा को जागृत करने के लिए शुद्धि जरूरी है और शुद्धि अनेक स्तरों पर होती हैं। हमारे यहाँ समझाया गया है कि शुद्धि की सात अवस्थाएँ होती हैं। पहली अवस्था है शुचि। शुचि शब्द उत्पन्न हुआ है शुच् धातु से और इसी धातु से शोक शब्द की भी उत्पत्ति होती हैं। शुचि का मतलब होता है अपने आपको शोक से मुक्त करना। शोक का मतलब होता है दु:ख जो आपके मन में भय उत्पन्न करता है। उस शोक से अपने आपको मुक्त करना शुचि कहलाता है। मान लो, आपको एक फुंसी दिखाई दे हाथ में तो आपके मन में विचार आता है कि यह कहीं कैंसर तो नहीं है! एक फुंसी के कारण मन में शोक हुआ कि नहीं? विचार आया कि कहीं यह कैंसर तो नहीं। यह विचार क्यों नहीं आया कि एक छोटी-सी फुंसी है? पहला विचार जो तुम्हारे मन में आया, वह इतना भयानक था कि छोटी फुंसी का ख्याल ही नहीं हुआ जबिक वह वही है, एक छोटी-सी फुंसी। शोक की यह स्थित मन की दुर्बलता की अवस्था है और इससे अपने आपको मुक्त करना शुचि कहलाता है।

हम बहुत बार कहते हैं कि कैंसर से भी घातक, एच.आई.वी. से भी घातक एक और बीमारी है जिसको कहते हैं, डी.आई.एफ.एस.—डिज़ीज़ इन्ड्यूज़्ड फीयर सिंड्रोम, मतलब बीमारी की कल्पना से उत्पन्न भय। इस बीमारी से कोई मुक्त नहीं हो पाता है। कैंसर या एच.आई.वी. का उपचार हो जाएगा, पर डी.आई.एफ.एस. का उपचार नहीं हो सकता। जब किसी परिस्थिति में भय आ जाता है, मन घबरा जाता है, व्यथित हो जाता है, चंचल हो जाता है, अपनी स्पष्टता को खो देता है, वह स्थिति है शोक की और जो इससे अपने आपको मुक्त कर लेता है, वह शुचि की अवस्था को प्राप्त करता है।

इसके बाद शुद्धि की जो दूसरी स्थिति है, उसको कहते हैं निर्मलता। निर्मल का अर्थ क्या होता है? मल का अभाव। मल कहते किसको हैं? जैसे शरीर का मल है, वैसे मन का भी मल होता है। शरीर का मल खाद्यान्नों से बनता है जबिक मन का मल सुख और दु:ख के भोग से उत्पन्न होता है। इसीलिए गीता में कृष्ण जी बार-बार कहते हैं कि समभाव रखो। सुख में भी, दु:ख में भी, ठण्ढी में भी, गर्मी में भी, उतार में भी, चढ़ाव में भी समभाव रखो, क्योंकि अगर तुम समभाव नहीं रख पाओगे तो मल जमने लगेगा। एक अवस्था से प्रभावित हो जाओगे और फिर वही चीज़ दिखलाई देगी तुम्हें और वह है मल। मल एक कंडीशनिंग है, एक मानसिक अनुबन्धन है, उससे अपने आप को हटाओ। निर्मल बनो, बिना किसी मानसिक, बौद्धिक या भावनात्मक बन्धन के।

जब इस प्रकार की आंतरिक मानसिक दुर्बलता समाप्त होती है तब तीसरी स्थिति आती है विमलता की। विमल का मतलब होता है कि मल के जो कारण थे, उनको अब तुम अच्छे में बदल दो। जिस वजह से तुम अपने आप को दूषित पाते थे, जिस परिस्थिति या विचार के कारण तुम अपने भीतर मल देखा करते थे, अब उस विचार को, दूसरे एक अच्छे विचार में परिवर्तित कर दो और उसको कहते हैं विमल—जिससे मल की उत्पत्ति न हो। अगर ईर्ष्या से मल की उत्पत्ति होती है, तो ईर्ष्या का विपरीत करो जिससे मल की उत्पत्ति न हो। उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। उसके लिए एक दूसरी भावना को पहली भावना के स्थान पर लाना पड़ता है, अच्छी भावना को नकारात्मक भावना के स्थान पर लाना पड़ता है।

चौथी स्थिति है शुद्धि जिसमें अपने प्रयासों को बढ़ाते हुए अपने जीवन में मानसिक और शारीरिक शुद्धि को कायम रखना होता है। जब हम इस प्रकार अपने जीवन के सभी स्तरों में एक संतुलन, समन्वय और सामंजस्य को स्थापित कर सकते हैं तो फिर अगली स्थिति है विशुद्धि। शुद्धि है सामान्य और विशुद्धि है विशेष लक्ष्य पर केन्द्रित। एक विशेष चीज़ को पकड़कर उस पर फिर ध्यान देते हुये उसको बदलने का प्रयास करना है।

विशुद्धि के बाद है पवित्र अवस्था। पवित्र शब्द 'पू' धातु से उत्पन्न हुआ है। पुनीत, पावन, पुण्य और पावक जैसे शब्द भी इसी धातु से उत्पन्न हुए हैं। पावक का मतलब अग्नि और अग्नि का कर्म क्या है? कुछ भी डालो सबको जला देगा। पवित्रता की स्थिति क्या है? कुछ भी डालो, वह स्थिति कभी भी अपवित्र नहीं मानी जायेगी क्योंकि सब कुछ अपने मूल स्वरूप को धारण किये हुए है।

एक उदाहरण देता हूँ। महात्मा बुद्ध के पास एक व्यक्ति आया और वह घंटों तक उन्हें गाली देते रहा। महात्मा बुद्ध शांत होकर सब सुनते रहे। जब उसने गाली देना समाप्त कर दिया, तो महात्मा बुद्ध ने कहा, 'एक प्रश्न पूछता हूँ तुमसे। अगर तुम किसी को कोई भेंट देते हो और वह उस भेंट को नहीं लेता, तो तुम क्या करते हो?' उस व्यक्ति ने कहा, 'में उस भेंट को वापस ले लेता हूँ।' महात्मा बुद्ध कहते हैं कि तुमने अभी तक मुझे जितना भेंट किया है मैं उसे स्वीकार नहीं करता, वापस ले लो। आप अगर महात्मा बुद्ध के स्थान पर होते तो क्या होता? एकदम मल्लयुद्ध शुरू हो जाता। लेकिन इतना सब सुनने के बावजूद भी महात्मा बुद्ध शांत ही रहे। महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व और चित्र देखो, उन्हें जो भला-बुरा कहा गया उसको भी जला दिया, कोई प्रतिक्रिया नहीं की, और अपनी आंतरिक मानसिक पवित्रता को बनाये रखा। एक प्रकार से कहा जाए कि जब व्यक्ति प्रतिक्रिया नहीं करता और स्वयं को किसी चीज से प्रभावित नहीं होने देता, तो पवित्र माना जाता है।

शुचि, निर्मलता, विमलता, शुद्धि और विशुद्धि जैसी पूर्व की अवस्थाएँ प्रयास मानी गयी हैं, उपाय मानी गयी हैं, लेकिन पवित्रता एक अनुभव है, प्रयास नहीं। मन के स्थिर और शांत होने की जो स्थिति है, उसको कहते हैं पवित्रता और इसकी परिणित होती है उज्ज्वलता में। उज्ज्वल का मतलब होता है प्रकाशित। शुद्धि की ये सात अवस्थायें हैं और योग तथा अध्यात्म में बतलाया जाता है कि किस प्रकार एक साधक शुद्धि के एक-एक स्तर को प्राप्त करता है। उसको प्राप्त करने से फिर जीवन का जो उत्थान और उद्धार होता है, वह अवर्णनीय है।

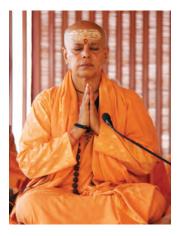
-10 सितम्बर 2015, श्री लक्ष्मीनारायण महायज्ञ, पादुका दर्शन



# The Path of Awakening

Swami Satyasangananda Saraswati

Is it possible to experience everlasting happiness? Right now it doesn't seem so. I used to ask Sri Swamiji that: "What is this everlasting happiness? It seems like such a weird idea to me because I have never experienced everlasting happiness." Then he said what the way is. What is standing between everlasting happiness and me? If it is the ego and I understand that, what can I do? What can I do



to remove the ego? Just understanding is not enough. I know I have to be good. I know I should be kind. I know I should love. I know I should be compassionate. I know all these things, but how do I do it? It doesn't happen. I am caught in desire, in anger, in greed, in attachment, in intoxication, in pride. I don't know how to change that. Sri Swamiji said, at the very end when he was leaving his body, in his last satsang, the way forward now for those who are really seriously thinking about these things. If you are not thinking about it, fair enough. You may do what you like. However, if you are seriously thinking about how to enrich the quality of your experience and how to remain happy, positive, strong and confident to enjoy life and move forward, you have to realize the Narayana within.

Realizing the Narayana within yourself means all of this. It is not an abstract experience that you see some Narayana floating in the air. It means that you are strengthening yourself, for Narayana is the preserver. You are nourishing yourself. You are preserving yourself: every cell, every atom, every nerve, every fibre of your body is being nourished, re-

energized, recharged. And you are beginning to experience calmness, peace, serenity and happiness more and more. You do experience it. It's not that you are totally devoid of it, as Narayana is within you and occasionally you do receive glimpses of that. That is why you begin your search. You say, "Hey, what's this? I want to have more of this. I want have more of this happiness." It is such a wonderful thing – when you are happy, your brain is smiling. If you take a picture of the brain when you are frowning, it looks all scrunched up. When you smile, the brain expands and looks healthy and happy. This is what the scientists tell us.

So just to remain happy, it is important that we begin this self-discovery. 'Where is that Narayana? What is the way I can reach it? Swamiji says ahamkara is the obstruction. Okay, but if I get rid of my ahamkara then what will be left? I don't know.' Everybody gets scared because they think that they have to destroy the ahamkara, they have to destroy the mind and the senses, they have to destroy everything that they see, hold on to, value and think of as important up to now. People become scared and confused and are unable to actually do anything. That is not the intention. We do not have to destroy anything.

We have to begin a process of transformation. The senses, the mind, the ego, they have to be transformed. They have all the qualities: divine, demonic and human. Most of the time we are operating from the demonic or the human. I would not even say human, because are we really humane? We may be human: we walk on two feet, we sleep on a bed – not on the floor like animals do, we eat from a plate. But are we really humane? Are we human in the true sense of the word? No. Not at all. As long as there is selfishness, self-interest, ego, there is no trace of knowledge in us. When we refine the ego, knowledge awakens.

It is the awakening that you have to think of, not destruction. You don't have to destroy the ego; you have to create the awakening. When you meditate, you don't lose anything; you transform. You transform your anger, your envy, your hatred. That same energy gets transformed. The tamasic energy of

ahamkara gets transformed into the sattwic and you begin to realize the divine nature.

So what is the way to do that? You read about this in books, you hear about this in satsangs, but how can you do it? That is the main question. 'How can I experience it?' Knowing is not enough, you have to experience it. Sri Swamiji told us that as well. He said, "Purify your karmas. Your karmas have to become those that bring about progression." He said, "Serve. Love. Give." Serve how? With love.

We all serve, but how do we serve? Do we serve with fear, anxiety, distraction, dissipation? Most often that is the case. He said, "Serve with love and with the attitude of giving, not taking." Usually when we serve, we are thinking of what we will get in return. But he said, "No, serve with the attitude of giving, not taking." That brings about the purification of karmas.

What a wonderful idea and what a wonderful way of expressing it Sri Swamiji has given us: "Feed man and God will be fed." That is what he said. Just one sentence, so powerful and so intense. Feed man and God will be fed. He did not say, "Sit with your eyes closed and try to see the Narayana inside you." He said, "If you want to see Narayana inside you, feed the hungry, clothe the poor, look after the ailing – those who don't belong to you, who are in dire need." If you want to know the Narayana inside, this is the way.

At the same time, he gave the path of mantra, yajna, homa. Mantra has a lot of power. It has brilliance. It has energy. It has knowledge. Therefore it also enhances the process of purification of the deep latent impressions within us, on account of which our karmas are what they are.

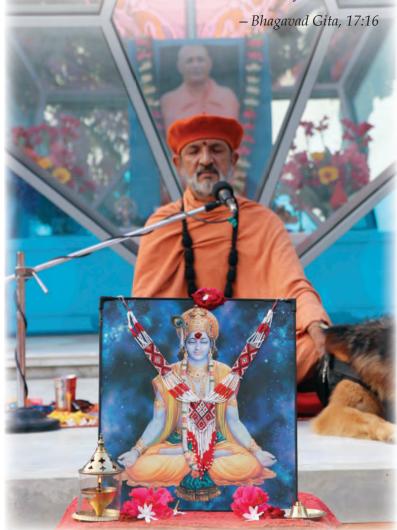
We are dense energy and how to lighten that? How to make the energy within us vibrant, light, full of knowledge? The way he said was serve, love, give, mantra and homa, with the bhava of bhakti.

– 11 September 2017, Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna, Paduka Darshan, Munger

# Mental Austerity

Manahprasaadah saumyatwam maunamaatmavinigrahah; Bhaavasamshuddhirityetat tapo maanasamuchyate.

Serenity of mind, good-heartedness, purity of nature, self-control – this is called mental austerity.



## भाव-शुद्धि से सद्गुणों की स्थापना

### रवाभी निरंजनानन्द सरस्वती

यौगिक जीवनशैली में एक यम आता है भाव-शुद्धि का। इस भाव-शुद्धि का मतलब क्या होता है? भाव शब्द की उत्पत्ति होती है 'भू' धातु से। 'भू' का मतलब है होना, जो है, और भाव का अर्थ हुआ, जो हम हैं। कुछ होने का मतलब है उसकी अन्तिम स्थिति आ गयी है। जैसे धरती को भी भू बोलते हैं। इसका मतलब धरती अंतिम तत्त्व है, इसके आगे अब क्रम-विकास नहीं है। इसी तरह भाव भी अंतिम उत्पाद होता है। भाव शारीरिक भी होता है और मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक भी। भाव से एक और शब्द निकलता है—स्व-भाव। आपका स्वभाव शारीरिक है, मानसिक है, प्राणिक है या आध्यात्मिक? किस क्षेत्र से जुड़ा हुआ है वह? सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को ही कहते हैं स्वभाव।

भाव की अभिव्यक्ति केवल शब्दों से नहीं, बल्कि व्यवहार में भी होती है। अगर आप चिढ़े हैं और कोई आपके पास आता है तो आप उसकी उपेक्षा कर देते हैं। जिस भाव ने आपको प्रभावित किया है उसी को आप अपने चारों ओर संसार में, घर में, परिवार में, मित्रों के साथ, बन्धुओं के साथ हमेशा व्यक्त करते रहते हैं। उसका प्रभाव फिर शरीर से आत्मा तक होता है। एक उदाहरण देता हूँ, भय। भय की स्थिति में क्या केवल शरीर ही प्रभावित होता है या पूरा व्यक्तित्व? क्रोध के समय क्या केवल आपकी वाणी ही क्रोधित है या पूरा शरीर, मन, व्यक्तित्व क्रोधित हो जाता है? उसमें संयम तो कहीं है नहीं।

अब देखिये, यौगिक जीवनशैली में पहले दान्ति और इन्द्रिय-निग्रह के यम-नियम बतलाए गए और उसके बाद बतला रहे हैं भाव-शुद्धि, क्योंकि दान्ति और इन्द्रिय-निग्रह में कुछ संयम आ जाने से फिर अपने आपको जानने में, अपना निरीक्षण करने में, अपने आप में परिवर्तन लाने में एक सुविधा हो जाती है। भाव-शुद्धि एक प्रक्रिया का नाम है जिसमें पूरे व्यक्तित्व को शुद्ध करना है। इस प्रक्रिया के पूर्ण होने पर मनुष्य शुद्ध भाव से युक्त होता है। भाव-शुद्धि प्रक्रिया है और परिणाम है शुद्ध भाव।

### तमोगुण का गुरुत्वाकर्षण

भाव-शुद्धि को अच्छी तरह जानने के लिए, इसका अभ्यास करने के लिए जीवन के हर स्तर में जो भाव उत्पन्न हो रहा है उसको जानना आवश्यक है। जीवन में जो भाव उत्पन्न होते हैं, उनकी अभिव्यक्ति हमेशा तमोगुणी होती है। मनुष्य के मन को सत्त्वगुण नहीं, तमोगुण ही विचलित और व्यथित करता है। पुण्य आपके मन को विचलित नहीं करेगा, पाप जरूर करेगा। प्रसन्नता आपके मन को विचलित नहीं करेगी, दु:ख आपके मन को विचलित करेगा। आप किसी अच्छाई के कारण कभी विचलित नहीं होगे, विचलित होगे हमेशा एक दोष, कमी या बुराई के कारण। यह कमी या बुराई न तो सत्त्वगुण है, न ही रजोगुण, बल्कि तमोगुण की अभिव्यक्ति है। इसलिए एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि भाव-शुद्धि में मनुष्य को अपने बुरे कमों, बुरे विचारों और पापों को देखना पड़ता है, अच्छाई को नहीं। सीधी बात बोल रहा हूँ। बुराई को देखो, दोष को देखो, कमी को देखो, नकारात्मकता को देखो, क्योंकि यह तमोगुण है जो तुम्हारे मन के व्यवहार में प्रकट होता है ईर्ष्या, घृणा, काम, क्रोध, लोभ आदि के रूप में। उनको जब तुम बदलने लगते हो और वे शुद्ध होते हैं, सकारात्मक होते हैं, सात्त्विक होते हैं, तो यह भाव-शुद्धि की प्रक्रिया मानी जाती है। इसलिए अपने पाप के आइने को देखकर उसको साफ करना है। पुण्य के आइने को साफ नहीं करना है, बल्कि तमोगुण के आइने को साफ करना है।

इसके लिए फिर उस प्रकार की ऊर्जा, शिक्त और सामर्थ्य की भी आवश्यकता है। रॉकेट को जब आसमान में भेजते हो तो उसके लिए सबसे अहम चीज होती है धरती के गुरुत्वाकर्षण को छोड़ना। एक बार वह उसे छोड़ दे तो फिर एकदम स्वतंत्र रूप से बिना किसी अवरोध के यात्रा करता है। बस, धरती के गुरुत्वाकर्षण को छोड़ने के लिए उसको सबसे ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। इसी प्रकार से मनुष्य को भी तमोगुण के गुरुत्वाकर्षण को पार करने के लिए सबसे अधिक परिश्रम करना पड़ता है। वहीं पर आदमी कतराता है, क्योंकि वह अपने भीतर की नकारात्मकता को झेल नहीं पाता, देख नहीं पाता। अगर देखता भी है तो खुद को उसका कारण नहीं मानता, बल्कि कहता है, 'मैं अपने आप में एकदम शुद्ध हूँ। यह किसी दूसरे के व्यवहार का परिणाम है कि मैं प्रतिक्रिया कर रहा हूँ। यह मेरी गलती नहीं है।' इसीलिए आदमी तमोगुण को कभी पार नहीं कर पाता है, रजोगुण क्या है समझ नहीं पाता है, और सत्त्वगुण की मात्र कल्पना करता है। यह आधुनिक परिस्थित है।

भाव-शुद्धि की प्रक्रिया अपने जीवन की नकारात्मकता की पहचान कराती है। तुलसीदास जी ने भी कहा था, 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' अब आप भले ही सोचो कि वे तो संत-महात्मा थे, यह सब कैसे कह दिया, लेकिन यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि उन्होंने क्यों यह बात कही है? सब कुछ करते हुए भी जीवन की जो सीमाएँ, नकारात्मकताएँ और दोष हैं, वे मनुष्य को छोड़ते नहीं हैं। छोड़ते नहीं तो कोई बात नहीं, जितनी बार विपरीत परिस्थिति आती है हमें सामना करके आगे बढ़ते जाना है। श्री स्वामीजी यही कहा करते थे कि हजार बार गिरकर भी हजार बार खड़े होकर मुस्कुराते हुए हमें आगे चलते रहना है। अब गिर जायें और रोते रहें कि हम गिर गए, तो फिर अगली यात्रा कैसे करेंगे? ऐसे व्यक्ति की



कौन मदद कर सकता हैं? लेकिन जो व्यक्ति सोचे कि हम गिरने पर भी उठ सकते हैं, वह उठने का प्रयास भी करता है।

इस यम में अपने जीवन की तामिसकता को देखना है और अगर लगता है कि यह किठन है तो फिर आपके लिए आसन-प्राणायाम ही पर्याप्त है। लेकिन याद रिखये कि आसन-प्राणायाम से न तो शान्ति मिलती है, न ही मोक्ष। आसनों का प्रयोजन तो स्वास्थ्य है। अगर हमारा लक्ष्य है सत्त्वगुण से युक्त होना, सत्त्व में अपने आपको स्थापित करना, तो उसके लिए आसन-प्राणायाम उपयोगी नहीं हैं। भूल जाओ उस चीज को। उसके लिए फिर जरूरी है, आत्म-निरीक्षण, और यह आत्म-निरीक्षण ज्ञानयोग भी नहीं है। यह विशेष रूप से भाव-शुद्धि है, क्योंकि इसमें आपको अपने सभी स्तरों का ख्याल करना पड़ता है।

#### भाव और प्राण

भाव का एक गहन सम्बन्ध है प्राण के साथ। अगर हम पूछें कि कितने प्राण हैं तो अनेक प्रकार के जवाब मिलेंगे। कोई कहेगा कि एक महाप्राण है, उसके बाद कहेंगे प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान इसकी पाँच विभक्तियाँ हैं। उससे आगे पूछेंगे कि इससे सूक्ष्म क्या है तो बोलेंगे, पाँच उप-प्राण हैं—देवदत्त, धनंजय, कूर्म, कृकर और नाग। उसके आगे क्या है, नहीं बोल पायेंगे। अभी तक हमलोगों ने प्राणों को शरीर से जोड़ा है। प्राण वक्ष के क्षेत्र में है, अपान नीचे है तो समान

बीच में है वगैरह। हमारी मान्यता है कि प्राणों का सम्बन्ध शरीर से है, वे शरीर के संचालन के लिए हैं। लेकिन एक चीज और है। प्राण हुआ स्थूल, इसका सूक्ष्म रूप क्या हुआ? चित्त-शक्ति। चित्त-शक्ति मन नहीं है, सूक्ष्म प्राण है। इस तरह स्थूल से सूक्ष्म तक प्राणों के सात स्तर होते हैं।

स्थूल शरीर का प्राण इन्द्रियों को संचालित करता है। यह हुआ शरीरस्थ प्राण। इससे सूक्ष्म है मनस्-बुद्धि प्राण जो मन और बुद्धि को संचालित करता है। यह अंत:करण की ऊपरी सतह है जिसके द्वारा आप संसार से सम्बन्ध रखते हैं। उसके बाद फिर चित्त-अहंकार प्राण आता है, फिर सूक्ष्म शरीर का प्राण, उसके बाद कारण शरीर का प्राण, फिर आनन्द शरीर का प्राण होता है और उसके बाद पूर्ण प्राण होता है, जो प्राणों का समग्र रूप होता है।

योग शास्त्र में बतलाया गया है कि स्थूल शरीर प्राण, मनस्-बुद्धि प्राण, चित्त-अहंकार प्राण और सूक्ष्म शरीर प्राण, इन चार अवस्थाओं तक प्राणी को प्रयास करना पड़ता है, इन्हें संतुलित करने के लिए, परिवर्तित करने के लिए, जागृत करने के लिए। उसके आगे जो होता है सब अपने आप होता है। कारण शरीर के आगे सब अपने आप होता है।

जिस भाव-शुद्धि की बात हम कर रहे हैं एक यम के रूप में, वह भाव और प्राण, दोनों को देखने की साधना है। जब मन की अवस्था और प्राणों की अवस्था में तालमेल होगा तब जाकर भाव-शुद्धि की भूमिका तैयार होगी। अगर कहें कि किसी व्यक्ति का हाव-भाव अच्छा है तो उस व्यक्ति को देखने से क्या अनुभव कीजिएगा? और जिसका हाव-भाव अच्छा नहीं है उसको देखने से क्या अनुभव



होगा? जिसका हाव-भाव अच्छा है, उसके चेहरे पर रौनक, प्रसन्नता, शान्ति, सबकी झलक दिखलाई देगी। और जिसका हाव-भाव अच्छा नहीं है, उसके चेहरे पर रूखापन दिखलाई देगा। सीधी-सी बात है। तो ये जो परिवर्तन आप देखते हो चेहरे में या भाव-भंगिमा में या व्यवहार में या वाणी में, ये शरीर, मन और प्राणों के भाव के प्रतीक माने जाते हैं। अब इन तीन चीजों को ही देखना है, और निरीक्षण की यह साधना शुरू होती है भाव-शुद्धि के साथ।

जैसा आपको पहले बतलाया, तमोगुणी स्वभाव को बदलने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। अभी तक तो आप लोगों से कह देते हैं कि जब कुछ मानसिक समस्या होती है तो अन्तमौंन कर लिया करो, लेकिन क्या अन्तमौंन से भाव-शुद्धि होगी? नहीं, क्योंकि अन्तमौंन भाव-शुद्धि की प्रक्रिया है ही नहीं। अन्तमौंन का अभ्यास जो आप करवाते हैं, उसमें भावनाओं को देखते हैं या विचारों को?

शरीर, मन और प्राण, इन तीनों में जब विकृति आती है तो व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कुण्ठित हो जाती है, सीमित हो जाती, नकारात्मक हो जाती है। अगर व्यक्ति अपने आपको देख नहीं पाता है, अपने आप में किसी चीज को परिवर्तित नहीं कर पाता है तो उसका मूल कारण क्या है? कारण यही है कि वह पूरे पहाड़ को देख रहा है। लेकिन अगर वह पूरे पहाड़ को न देखकर एक ही चीज को पहले देखे और उसे सँभाले, फिर दूसरी चीज को देखकर उसे सँभाले तो परिवर्तन सम्भव है। एक उदाहरण देता हूँ, अगर कहीं पर रास्ता बनाना है और बीच में ऊबड़-खाबड़ है तो पहले हम मिट्टी हटायेंगे। मिट्टी हट जाने के बाद अगर बीच में चट्टान-पत्थर हैं तो उनको हटायेंगे। उसी प्रकार से शरीर, मन और प्राण के साथ भी करना है।

### भाव-शुद्धि का विपरीत क्रम

शरीर के लिए हमने आसन-प्राणायाम कर लिया, जिससे हमारे प्राणिक अवरोध दूर हो गए, प्राणों का संचार ठीक होने लगा। फिर हमने ध्यान किया। अन्तर्मीन के अभ्यास से हमारे मन की विचलित अवस्था ठीक हुई, मन को थोड़ा बहुत शान्त कर पाये। लेकिन भाव-शुद्धि का क्रम शरीर से शुरू नहीं होता। यह कारण शरीर से शुरू होता है, ऊपर से, और उस ऊपर की अनुभूति को आपको नीचे लाना है। अभी तक तो आप प्रयास करते थे नीचे से ऊपर जाने का, लेकिन भाव-शुद्धि के इस यम में क्रम उल्टा है।

पहले नीचे के स्तर को संतुलित और समन्वित कर लिया आसन-प्राणायाम के अभ्यास से, मन की उथल-पुथल को काफी हद तक शान्त कर लिया ध्यान के अभ्यास से, अब इसके बाद आती है भाव-शुद्धि। भाव-शुद्धि में सीधे ऊपर जाना है और ऊपर से फिर नीचे आना है, क्योंकि आप न अपने स्वभाव को रूपान्तरित कर पाते हो, न तमोगुण को। ऐसे में क्या करना है? ऊपर जाओ। एक भाव को ऊपर में लाओ—आनन्द का, सुख का या शान्ति का और उस भाव को फिर प्राणमय कोश, मनोमय कोश और अन्नमय कोश में ले आओ, और उस अवस्था को कायम रखो। ऊपर से नीचे आना है और हर स्तर पर एक शुद्धता की स्थापना करनी है—प्राणिक शुद्धता, मानसिक शुद्धता, वैचारिक शुद्धता, भावनात्मक शुद्धता। नीचे से जाओगे तो कभी नहीं पकड़ पाओगे उस शुद्ध तत्त्व को क्योंकि नीचे में पैर का दर्द ही आपके ध्यान को खींचते रहेगा। ऊपर जाओगे और उस चीज से जुड़ जाओगे तो उस चीज को फिर धीरे-धीरे नीचे लाकर स्थापित करते जाओगे हर स्तर पर। अब हर स्तर को आप देख सकते हो कि यहाँ पर मेरी प्रतिक्रिया, किस परिस्थिति में, किस विषय के साथ किस प्रकार की होती है, मैं कैसे उसको संतुलित कर सकता हूँ, कैसे उसको पार कर सकता हूँ।

जब आदमी नाव के किनारे समुद्र में तैर रहा होता है और तैरते-तैरते थक जाता है तब नाव वाला ही उसको टायर फेंक देता है जिसको पकड़कर तैरने वाला आराम कर लेता है। लेकिन अगर तैर रहे हो और खोज रहे हो कि मेरा टायर कहाँ हैं जिसको पकड़कर मैं थोड़ा आराम कर सकूँ तो वह नहीं मिलने वाला, क्योंकि तुम इधर से जा रहे हो और टायर आ रहा है ऊपर से। नाविक ने ऊपर से फेंका है। भाव-शुद्धि को भी इसी प्रकार से देखना है। किसी सद्गुण को पाने के लिए संघर्ष नहीं करना है, बल्कि उसे पकड़कर नीचे लाने का प्रयास करना है। जैसे शान्ति का सद्गुण है, पूछो उससे कि तुम वहाँ क्या कर रहे हो, नीचे आओ, मेरे मन में घुसो। मन में क्यों नहीं घुस सकते? क्या अवरोध है मन में? उसको साफ करो। चिन्ता है? किस बात की? तुम्हारी शादी की? अरे! जब होनी होगी तब होगी! चिन्ता से मुक्त हो गए। अगली परेशानी क्या है? खाना नहीं है। चलो, जूता साफ कर लेते हैं, चवन्नी तो मिल जायेगी, दो रोटी खा लेंगे। मतलब जो भी परिस्थिति आती है उससे अपने आपको इस प्रकार मुक्त करते जाना है, उसका समाधान खोजते जाना है। यह नहीं कि हम निराश होकर हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाएँ।

व्यक्ति की सोच इस प्रकार की होनी चाहिए कि मैं समर्थ हूँ। लेकिन आदमी ऐसा नहीं सोच पाता। मेरे पास पैसे नहीं हैं, मैं क्या खाऊँगा, कैसे जीवित रहूँगा—इसी चिंता में वह रोते रहता है, चिल्लाते रहता है, गिड़गिड़ाते रहता है। तो यहाँ पर ऊपर से एक अच्छी चीज को लाकर, मानसिक, प्राणिक, शारीरिक आदि जितने भी हमारे स्तर हैं जहाँ हम अपने आप को अभिव्यक्त करते हैं, वहाँ उसको स्थापित करना है, आरोपित करना है। इस प्रकार यह एक आत्म-निरीक्षण और आत्म-परीक्षण की विधि बनती है। जब इस प्रकार का पुरुषार्थ होता है तब फिर सद्गुण का प्रवाह नीचे की ओर होता है। आपका संघर्ष होता है नीचे से ऊपर जाने का, लेकिन सद्गुण का प्रवाह होता है ऊपर से नीचे।

यह भी याद रखिए कि जिस प्रकार एक सामर्थ्यवान् व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति पर शासन कर सकता है, उसी प्रकार से एक सूक्ष्म कोश भी दूसरे कोशों पर अपना शासन कर सकता है। अगर हमारा आनन्दमय कोश सक्षम है, मजबूत है, तो वह हमारे विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों को भी नियंत्रण में रखेगा। अगर हमारा विज्ञानमय कोश मजबूत है तो फिर वह हमारे मनोमय, प्राणमय और अन्नमय कोशों को नियंत्रित रखेगा। जो शक्तिशाली है वह तो दूसरे पर शासन करेगा न! अभी आपका शरीर शक्तिशाली है, मन से ज्यादा। मन भावनाओं से ज्यादा शक्तिशाली है। तो हमारी शक्ति पैरों में है, सिर में नहीं। अगर ऊपर से आप एक सद्गुण को नीचे ला पाओगे और उस चीज को स्थापित कर पाओगे तो वह आपके ज्यादा काम आएगा।

भाव-शुद्धि की यह जो बात हमलोग इस अध्यात्म संस्कार साधना सत्र में कर रहे हैं वह ऊपर से एक अच्छी चीज को लाकर नीचे स्थापित करने की बात है। नीचे से उपर चढ़ने की बात मैं नहीं कर रहा हूँ। एक अच्छी वस्तु को लाकर अपने जीवन में स्थापित करना है, परिवर्तित नहीं करना। परिवर्तन होगा जब आप नीचे से ऊपर की ओर जा रहे हैं और स्थापना होगी जब आप ऊपर से नीचे आ रहे हैं। तो भाव-शुद्धि है यही स्थापना सद्गुणों की।

– 26 जून 2017, अध्यात्म संस्कार साधना सत्र, गंगा दर्शन



#### **SADHANA**

### Swadhyaya for Practising Bhava Shuddhi

During the Adhyatma Samskara Satra held in July 2017, Swamiji not only explained the idea of bhava shuddhi but also guided the aspirants through a step-by-step swadhyaya to bring about bhava shuddhi. The practice is reproduced here.

- 1. Bring to mind a situation or person that creates a negative bhava in you, whether recent or old. Identify that bhava, name it is it anger, hurt, resentment, jealousy, frustration, or something else?
- 2. Accept that bhava without any justification or guilt, knowing it is only a superficial expression of a deeper weakness that you need to work on, and that identifying it will lead you to understanding it and getting rid of it, so you are lighter and happier.
- 3. Try to experience the quality of prana this bhava is producing in your body and in your mind. Be aware of this negative energy, without fear and without hesitation, and accept that the negative bhava and the negative prana go hand-in-hand.
- 4. Also be aware of the thoughts that it is producing in your mind, and accept them.
- 5. Now allow the mind to become one-pointed and go deeper, into the deeper mind, the level where the source of the negative bhava lies. Ask yourself what is the real cause of this bhava, what sense of lack is producing it? Be honest and clear, hide nothing, pretend nothing. Accept this deeper cause, with conviction that you are ready to work on it and alter it.
- 6. Be also aware of the corresponding prana you may find that the intensity of this prana is actually much stronger than the prana of the surface bhava you are trying to work

- on. Accept the prana, with conviction that you are ready to work on it and alter it.
- 7. Now invoke the karana sharira prana, that subtle sattwic energy through which you connect with your inspiration. Separate yourself from the negative cause and prana that you identified in the deeper mind, and allow yourself to connect with that higher prana. Use whatever visualization, idea or feeling helps you do this. Remember that to begin with it may not be easy or a strong experience, but with practice it will become easier and stronger.
- 8. With the help of this prana, go into the ananda experience. You can use a visualization such as imagining a bubble above your head full of the highest prana, and then centre your awareness inside it. You can imagine the hiranyagarbha, the golden womb which is the Source of all, and centre your awareness inside it. Or you can simply visualize your guru or ishta high above you transmitting that ananda prana to you. Use whatever visualization you feel most attuned to, and remain in that experience for some time, feeling the joy, the fullness, the unconditional love, the positive connection. Feel the prana of these qualities flowing through your whole being.
- Now take this ananda prana and its associated qualities of fullness, joy, etc. and make it flow into the levels of the psychic mind and the deeper mind where the seeds of your negative bhava exist.
- 10. Flood it again and again until that negative bhava dissipates through the force of this higher prana, this higher bhava.
- 11. Come back to your surface mind. What quality of bhava and what kind of thoughts do you find there? Do you find that the negative bhava you had experienced at the beginning of this swadhyaya has dissolved to some extent? Are you are able to extend an inner joy and positive connection towards the situation or person that had caused the negative bhava, and to all situations and persons? Keep practising until you are able to.

### भावना को ईश्वराभिमुख बनाना

### रवामी निरंजनानन्द सरस्वती

श्रीमद् भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में एक श्लोक आता है, जिसमें भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है –

> मय्येव मन आधत्स्व मिय बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय:॥12.8॥

अपना मन मुझमें लगा दो, अपनी बुद्धि मुझे दे दो, फिर निश्चित रूप से मुझ में ही निवास करोगे, इसमें संशय नहीं है। कितनी सुन्दर बात यहाँ पर कही गई है—मन और बुद्धि मेरे में लगा दो। अब एक क्षण के लिये जाते हैं भगवान श्रीकृष्ण के बचपन पर, जब वे माता यशोदा के साथ एक दिन यमुना किनारे गये। उस दिन माताएँ दीप जलाकर नदी में उन्हें प्रवाहित कर रही थीं। श्रीकृष्ण पानी में कमर तक उतर गये और जो बहते हुए दीप उनके समीप आ रहे थे उनको पकड़कर किनारे रखते गये। माँ यशोदा ने प्रश्न किया, 'कृष्ण! इन दीपों को तुम पानी से हटाकर किनारे क्यों रख रहे हो?' श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मैया, जो दीप मेरे समीप आते हैं उनको में उठाकर सुरक्षित रख देता हूँ। लेकिन जो दीप मुझसे दूर बह रहे हैं मैं वहाँ तक नहीं जा पाता, उनको सुरक्षित नहीं रख पाता।'

इन्हीं दो विषयों पर आज चिंतन करना है, श्रीकृष्ण की बाल कथा और गीता में कहा गया उपदेश, मय्येव मन आधत्स्व मिय बुद्धिं निवेशय। यहाँ पर कितना सुन्दर दृष्टान्त है—दीप जीवात्मा है, नदी संसार है और कृष्ण नदी के तट पर खड़े हैं। जब कोई जीवात्मा कृष्ण के समीप आती है तो कृष्ण उसे पानी से सुरक्षित उठाकर किनारे पर रख देते हैं। आज यही तो लोगों की आवश्यकता भी है। कुछ महीने पहले विश्व के एक बहुत विख्यात वैज्ञानिक, स्टीवन हॉकिंस ने घोषणा की थी कि मानवता के पास मात्र दो-ढाई सौ वर्ष शेष हैं, उसके बाद मानवता का अन्त होगा। क्यों? इसलिए कि धरती, जल, वायु, आहार, सब प्रदूषित हो चुके हैं, जीवन प्रदूषित हो चुका है और अब शुद्धता की ओर पुन: वापस आना, भौतिक तत्त्वों को पुन: शुद्ध करने का प्रयास करना संभव नहीं है। इस वैज्ञानिक ने आगे कहा कि या तो मानव जाति अपने विध्वंस के लिये तैयार हो जाए या फिर अन्य ग्रहों में नया घर बसाये।

एक विश्वविख्यात वैज्ञानिक का यह कहना निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमारे समाज की दिशा का संकेत देता है। हमारा समाज किस ओर जा रहा है? विध्वंस, अराजकता, अशान्ति, तनाव और युद्ध की ओर। इसका निदान



मिलेगा कहाँ? निदान तब मिलेगा जब हम अपने आपको ईश्वराभिमुख करेंगे। अभी हम सब संसाराभिमुख हैं, विषयाभिमुख हैं। सत्संग में आते हैं, अच्छी बातों को सुनते हैं, लेकिन उनको जीवन में लागू नहीं कर पाते क्योंकि ध्यान घर-परिवार और काम-धंधे में ही लगा रहता है। हम चाहते हैं शान्ति, लेकिन शान्ति की व्यवस्था को हम अपने जीवन में नहीं ला पाते। चाहते हैं तनावमुक्ति, लेकिन रोज की परेशानी से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते। हमारे जीवन में जो असंतुलन, अव्यवस्था और अराजकता है, जो शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक दोष एवं रोग हैं. ये प्रतिदिन बढते जाते हैं।

निदान केवल एक ही है-ईश्वर चिंतन, स्वयं को ईश्वराभिमुख करना, और उसके लिये तीन चीजों पर ध्यान देना है-विचार, व्यवहार और कर्म। मनुष्य जीवन में ये तीन ही अभिव्यक्ति के साधन हैं और इन्हें सकारात्मक बनाना है। आप अपने ही विचार, व्यवहार और कर्म को देखिये। आप जब किसी के पास जाते हैं और कोई बात होती है तो हमेशा आलोचना या निन्दा की ही होती है। अगर अच्छी बात होती भी है तो मन ईर्ष्या से भर उठता है, प्रसन्नता से नहीं। मन के इस तमोगुणी स्वभाव को संतुलित और सात्त्विक बनाने के लिये मन का ईश्वराभिमुख होना आवश्यक है।

### ईश्वर की सहज स्मृति

अपने को ईश्वराभिमुख करने के लिये मार्ग बहुत हैं। कर्म भी एक मार्ग है, ज्ञान भी एक मार्ग है, भिक्त भी एक मार्ग है। हमारे मनीषी एक और उपाय की चर्चा करते हैं—अपने भीतर आत्मभाव को जागृत करो। आत्मभाव का क्या मतलब होता है? एक उदाहरण देता हूँ। अगर आपका बच्चा बीमार पड़ जाए तो रातभर जागकर उसका ख्याल करते हैं। अगर आपका बच्चा विदेश चले जाए तो उसकी याद आपके मन के एक कोने में हमेशा बनी रहती है। आप कुछ भी काम करोगे, अगर अच्छा खाना भी बनाओगे तो एक विचार जरूर आयेगा कि मेरी संतान को यह भोजन प्रिय था। संतान की स्मृति आपके मानस पटल पर छायी है। क्या आप ईश्वर की स्मृति को भी इस रूप में परिवर्तित कर सकते हो? अगर आपसे कहें कि ईश्वर का स्मरण करो, तो आप कहेंगे कि हम ध्यान कैसे लगायें, कौन-सा मंत्र जप करें, हमें क्या उपाय करना होगा? लेकिन अगर हम आपसे कहें कि अपने बेटे का ख्याल करो जो अमेरिका में रहता है तो उसके लिये आप कभी नहीं पूछोगे कि हमें ध्यान करना पड़ेगा क्या!

यहाँ पर बात हो रही है स्मरण की। भगवान का स्मरण कैसे करें? जैसे एक अभिभावक परदेश में गई अपनी संतान को हमेशा मन में याद रखता है, उसी तरीके से ईश्वर का स्मरण होना चाहिये। आप कुछ खाते हो, एक बार मन में विचार जरूर आना चाहिये कि यह भोजन मेरे आराध्य को प्रिय है। आप कुछ पीते हो, एक बार विचार जरूर आना चाहिये कि यह पेय मेरे आराध्य को प्रिय है। जो भी आप करते हो, एक बार विचार जरूर आना चाहिये अपने आराध्य का। जैसे अपने बेटे या बेटी का विचार आता है, वैसे ही अपने इष्ट का, अपने आराध्य का, अपने गुरु का विचार आना है। तब जाकर मन धीरे-धीरे ईश्वराभिमुख होता है, विषयों से हटता है। विषयों को नकारना नहीं है, विषयों में रहकर भी विषयों से आसक्त नहीं होना और ईश्वर का नाम स्मरण करना, इसी को तो वैराग्य कहते हैं। विषयों के त्याग को वैराग्य नहीं कहते। वैराग्य अलग है, त्याग अलग। विषयों से आसक्त नहीं होना ही वास्तविक वैराग्य है।

मान लीजिये कि आपने अपने मित्र की कोई महँगी मोटरगाड़ी एक सप्ताह के लिये ली है। आप बहुत सावधानी से उसका उपयोग करते हैं, इस समझ के साथ कि मुझे इसे लौटाना है। गाड़ी में खरोंच नहीं आनी चाहिये, कुछ खराब नहीं होना चाहिये, आखिर मेरी गाड़ी नहीं है, मेरे मित्र की है। क्या उस गाड़ी से आपका राग है या वैराग्य है? अगर आपकी गाड़ी होती तो राग होता। लेकिन आपके मित्र की है तो देखभाल करते हैं, पूरा ध्यान देते हैं, लेकिन राग नहीं, वैराग्य है। उसी प्रकार संसार में भी होना है। राग और द्वेष मन को पेण्डुलम की भांति कभी इधर तो कभी उधर ले जाते रहते हैं। लेकिन मन जब शान्त और स्थिर होता है तो

न राग से प्रभावित होता है, न द्वेष से। योग सूत्रों में कहा है— सुखानुश्यी रागः, दुखानुशयी द्वेषः। सुख के प्रति आकर्षण राग है और दुःख से विकर्षण ही द्वेष है। वैराग्य बीच की स्थिति है जहाँ पर आप न सुख से प्रभावित होते हो, न दुःख आपको प्रभावित करता है।

#### आत्मभाव

ईश्वराभिमुख होने पर आपके मन के भीतर यही भाव आता है। संसार से जुड़ोंगे तो राग होगा और परमेश्वर से जुड़ोंगे तो आन्तरिक शान्ति एवं संतुलन की जो स्थिति होगी वह वैराग्य की स्थिति है। इस संतुलन की अवस्था में आत्मभाव का उदय होगा—मैं अपने आपको दूसरे में उसी तरह देखता हूँ, जिस तरह मैं स्वयं को अपनी संतान में देखता हूँ। मान लीजिए आपको खबर मिलती है कि आपकी गाड़ी का एक्सिडेंट हुआ है। उस गाड़ी में चार लड़के जा रहे थे, जिनमें एक आपका है। चारों घायल हैं, अस्पताल में हैं। आप घबराकर अस्पताल जाते हो और सबसे पहले देखते हो अपने ही पुत्र को जो घायल है। हो सकता है उसे बस खरोंच लगी हो, लेकिन चिन्ता अपने पुत्र की होती है। दूसरे लड़कों का हाथ या पैर टूट गया है, आप सहानुभूति दे दोंगे, सहायता के लिये थोड़ा हाथ बढ़ा दोंगे अवश्य ही, लेकिन अपनत्व की जो भावना अपनी संतान के साथ अनुभव की, वह दूसरों के साथ आप अनुभव नहीं कर पाओगे। और अगर हम अपनत्व की भावना दूसरों के साथ भी अनुभव कर सकें तो उसे कहते हैं आत्मभाव।

हमारे गुरुजी कहते थे कि जब तुम दूसरों को देखते हो तो याद रखो कि तुम उनके भीतर स्थित ईश्वर को भी देख रहे हो। अगर कोई दु:खी है तो याद रखना कि उस व्यक्ति के भीतर ईश्वर भी दु:खी है क्योंकि वह दु:ख के अनुभव से अछूता नहीं है। अगर कोई भूखा है तो याद रखना कि उसके भीतर बैठा ईश्वर भी भूखा है, वह मनुष्य के दु:ख और दर्द से अलग नहीं है। अगर कोई प्यासा है तो याद रखना कि उसके भीतर बैठा हुआ ईश्वर भी प्यासा है, क्योंकि वह मनुष्य के अनुभव से भिन्न नहीं है। मनुष्य के भीतर ईश्वर का वास तो है ही, और उस ईश्वर को, ईश्वर की प्रभुता को दूसरों में देख पाना ही आत्मभाव है। जिसके जीवन में यह आत्मभाव एक अंश भी आता है, उसका जीवन रूपी दीपक बहते-बहते श्रीकृष्ण के और समीप आ जाता है। जिसके जीवन में सुख-शान्ति स्वत: आती है, क्योंकि बुद्धि और मन ईश्वर में ही समर्पित हो जाते हैं।

इसलिये हमारे गुरुजी कहते थे कि शास्त्र तो पढ़ लोगे, विद्या को प्राप्त तो कर लोगे, लेकिन अगर अपने जीवन को सुधारने का प्रयत्न करना है तो सभी में ईश्वर की छवि को देखने का प्रयास करो—'जहाँ कहीं देखा प्रभुजी की माया, लेकिन सबके दिल में है प्रभुजी की छाया।' जहाँ कहीं देखो प्रभुजी की माया छायी

है, लेकिन अगर दिल में टटोलोगे वहाँ तुमको ईश्वर की छाया अवश्य दिखलाई देगी, उनकी उपस्थिति का अनुभव और आभास निश्चित रूप से होगा।

### शिक्षा को जीवन में उतारना

हमें अब इसे एक साधना के रूप में अपनाना है। गीता में यह बात कही है, गीता में वह बात कही है, सब तो अपने-अपने तरीके से उसको समझायेंगे ही, हम भी एक श्लोक का चयन करके उसके बारे में आपसे बोल रहे हैं। इस प्रकार सात सौ विषय हैं गीता में, हर श्लोक एक विषय है जिस पर चर्चा हो सकती है, किन्तु चर्चा करने से ही क्या हमलोग इसके गूढ़ अर्थ को समझ पायेंगे? जब हम प्रस्थान-त्रयी का अध्ययन कर रहे थे तो गीता पर भाष्य लिखना आरम्भ किया। दो अध्याय लिखे, गुरुजी के सामने प्रस्तुत किये। गुरुजी ने कहा, 'गीता पर फिर कभी मत लिखना।' हमने पूछा, 'क्यों?' उन्होंने कहा, 'देखो, तुम जो लिख रहे हो वह अपनी बात लिख रहे हो। कृष्ण जी ने जिस विचारधारा और परिस्थिति से प्रेरित होकर यह बात कही है, और अर्जुन जैसा व्यक्ति जिसने यह बात सुनी है, वैसी आज किसी की मानसिकता नहीं है। इसलिये गीता के उपदेशों को तुम अपने जीवन में लागू करने का प्रयास करो, और बात करो योगेश्वर श्रीकृष्ण की, क्योंकि यह उन्हीं के व्यक्तित्व, स्वभाव और चिरित्र का एक स्न्दर मंथन और स्वरूप है।'



जब मनुष्य ईश्वराभिमुख होता है तो सबसे पहले उसको वैराग्य होता है। वैराग्य त्याग की ओर नहीं ले जाता, बल्कि वह वैराग्य उसको विषयों की क्षण-भंगुरता और जीवन की नश्वरता का अनुभव दिलाता है। आज हम आकर्षित हैं किसी गाड़ी के लिये, लालायित हैं कुछ प्राप्त करने के लिये, लेकिन क्या उससे हमें सुख मिलेगा? हर व्यक्ति पैसा चाहता है, सब कोई पैसा जमा कर रहे हैं, पर धरती माँ की परवाह कोई नहीं करता। जब इस पृथ्वी पर कुछ भी नहीं रहेगा तब तुमको मालूम पड़ेगा कि तुम्हारे पास जो करोड़ रुपये हैं उसको खाकर भी अपना पेट नहीं भर पाओगे! रुपया-पैसा का होना उतना आवश्यक नहीं, जितना अपने और दूसरे के प्रति संवेदनशील होना आवश्यक है। यही हमारी संस्कृति की शिक्षा है।

आज पाश्चात्य संस्कृति के सम्मोहन में हम अपनी संस्कृति के संस्कारों और शिक्षाओं को भूल रहे हैं। मुझे तो याद है साठ-सत्तर के दशक का समय जब अपने ही देश में कोई व्यक्ति गीता या रामायण हाथ में लेकर बाहर निकलता था तो लोग उसको बैकवर्ड मानते थे। लेकिन जब कोई अंग्रेजी उपन्यास लेकर चलता था तो लोग कहते थे कि कितना पढ़ा-लिखा है, अंग्रेजी जानता है, बड़ा फॉरवर्ड आदमी है! यह हमारे ही देश के लोगों का वचन है, पाश्चात्य लोगों का नहीं। इससे यही संकेत मिलता है कि हम अपनी आध्यात्मिक संस्कृति, परम्परा और संस्कार से बहुत दूर हो चुके हैं। स्वयं को बचाने के लिये, अपने परिवार-समाज को बचाने के लिये, अपनी इस धरती को बचाने के लिये आज अत्यन्त आवश्यक है कि हम ईश्वराभिमुख हों। परमश्रद्धेय परमपूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी की पावन स्मृति में श्री स्वयम् संस्था ने यह जो पंचम संत अधिवेशन यहाँ पर किया है, इस प्रकार के आयोजन बहुत आवश्यक हैं। यहाँ अनेक संतगण पधार कर अपने आशीर्वचन दे रहे हैं, जीवन में आगे बढ़ने की शिक्षा और संस्कार दे रहे हैं, उसको आत्मसात् करना बहुत जरूरी है।

जीवन धर्म और मर्यादा द्वारा संचालित होता है। आप खुद देख लो, जीवन में जब-जब परेशानी आयी वह तभी आयी जब आप ने कोई मर्यादा तोड़ी है। जब तक आप मर्यादा के भीतर रहे हैं तब तक मर्यादा ने आपकी रक्षा की है, कभी कोई परेशाना या दिक्कत नहीं हुई। मर्यादा को प्राप्त करना, यह जीवन की शिक्षा है और इसी मर्यादा में अपने आपको ईश्वर को समर्पित करना, यह जीवन का संस्कार है। अन्त में हम केवल एक ही बात कहना चाहेंगे कि अपने जीवन-दीप को संसार-नदी की मझधार में मत बहने दो, बल्कि प्रयत्न करो कि यह दीप एक दिन किनारे जा पहुँचे जहाँ पर स्वयं योगेश्वर कृष्ण अपने हाथों से उठाकर इसे सुरक्षित रख दें— मय्येव मन आधतस्व मिय बुद्धिं निवेशय, निविस्थिति मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।

–20 सितम्बर 2017, संत सम्मेलन, कोलकाता

There is an anecdote regarding the best-known Sufi, Rumi. Rumi was a well-loved and respected scholar and preacher for years, and thousands came to hear him. Then his mentor Shams of Tabriz came into his life, a wild dervish, and Rumi lost his reputation, the love and the respect, even his own family betrayed him. What Shams said at that time was: "This is what Rumi needed. He has not known what it is like to be criticized, hated, slandered, misunderstood, misjudged. With all external support gone, he will be forced to depend on his connection with the Beloved to sustain him. That is when his inner self will shine."

That is why enduring criticism and slander is the best way of bhava shuddhi. At first it hurts, makes you reactive, defensive, aggressive. But if you are a sadhaka of some substance, then slowly, the time spent in the hurt, etc. becomes less and less. Ultimately, you wake up one day, feeling the unconditional love of the Beloved, and it no longer matters who says what, who thinks what; it no longer matters that there is no authentic love in the external world. You rejoice in having known that unconditional love, realizing that it was always there, and the world no





### Satyam Tales सत्यम् गाथाएँ

Satyam Tales depict the life and teachings of our beloved guru, Sri Swami Satyananda Saraswati. Through the medium of these simple narratives, we hear the voice of Sri Swamiji inspiring one and all. The stories are a delightful read for children, adults and old alike, conveying an invaluable message for those engaged in the world and for those seeking the spirit. These tales will touch your heart and give you joy, hope, conviction and, above all, faith.







### For an order form and comprehensive publications price list, please contact:

Yoga Publications Trust, Garuda Vishnu, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India Tel: +91-6344 222430, Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.



हरि ॐ

अस्तिहर्म एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी योगमाया सरस्वती सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती संन्यास पीठ, द्वारा-गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित। थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मद्रित।

#### © Sannyasa Peeth 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

संन्यास पीठ पादुका दर्शन, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201,

अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर: नारायणास्त्र यज्ञ 2018

बिहार, भारत

अन्दर के रंगीन फोटो : संन्यासपीठ गतिविधियाँ 2018-1: देवी पूजा; 2-4: गुरु-भिक्त योग; 5: अध्यात्म संस्कार साधना सत्र; 6-8: नारायणास्त्र यज्ञ

